श्रीमज्जिनसहस्रनाम-स्तोत्र
प्रस्तावना

स्वयंभूवे नमस्त्युभ्यमुत्पाद्यात्मान मात्मनि ।

स्वात्मनैव तथोद्भूत वृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ॥१॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपने स्वयम् अपने आत्मा को प्रकट किया है, अर्थात् आप अपने आप उत्पन्न हुए हैं, इसलिए आप स्वयंभू कहलाते हैं । आपको आत्मवृत्ति अर्थात् आत्मा में ही लीन अथवा तल्लीन रहने योग्य चारित्र तथा अचिन्त्य महात्म्य की प्राप्ति हुई है, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो ।

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोस्तु ते ।

विदावरं नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥२॥

अन्वयार्थ : आप जगत के स्वामी हैं, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो, आप अंतरंग तथा बहिरंग दोनों लक्ष्मी के स्वामी हैं, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो । आप विद्वानों मे और वक्ताओं में भी श्रेष्ठतम है, इसलिये भी आपको मेरा नमस्कार हो ।

कर्मशत्रुहणं देव मानमन्ति मनीषिणः।

त्वामानमन्सुरेण्मौलि-भा-मालाऽभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥

अन्वयार्थ : हे देव ! बुध्दिमान आपको कामदेव रूपी शत्रु का नाश करनेवाला मानते हैं, तथा इन्द्र भी अपने मुकुट-मणि के कान्तिपुंज से आपके पाद-कमलों की पूजा करते हैं, (उनके शीष आपके चरणो में झुकाकर आपको नमस्कार करते हैं), इसलिये आपको मेरा भी नमस्कार हो ।

ध्यान-द्रुघण-निर्भिन्न-घन-घाति-महातरुः ।

अनन्त-भव-सन्तान-जयादासीदनन्तजित् ॥४॥

अन्वयार्थ : आपने अपने ध्यानरूपी कुठार (कुल्हाड़ी) से बहुत कठोर घातिया कर्मरूपी बडे वृक्ष को काट डाला है तथा अनन्त जन्म-मरणरूप संसार की संतान परंपरा को जीत लिया है इसलिये आप अनन्तजित कहलाते हैं ।

त्रैलोक्य-निर्जयाव्याप्त-दुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।

मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन! मृत्युंजयो भवान् ॥५॥

अन्वयार्थ : हे जिन! तीनों लोकों का जेता होने का जिसे अत्यंत गर्व हुआ है, तथा जो अन्य किसी से भी जीता नहीं जा सकता ऐसे मृत्यु को भी आपने जीत लिया है इसलिए आप ही मृत्युंजय कहलाते हैं ।

विधूताशेष - संसार - बन्धनो भव्यबान्धव: ।

त्रिपुराऽरि स्त्वमेवासि जन्म मृत्यु-जरान्तकृत् ॥६॥

अन्वयार्थ : संसार के समस्त बंधनों का नाश करनेवाले आप, भव्य जीवों के बन्धू हैं । जन्म, मृत्यु और वार्धक्य रूपी तीनों अवस्थाओं का नाश करनेवाले भी आप ही हैं, अर्थात् आप ही त्रिपुरारि हैं ।

त्रिकाल-विषयाऽशेष तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।

केवलाख्यं दधच्चक्षु स्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशित: ॥७॥

अन्वयार्थ : हे अधीश्वर, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों के समस्त तत्त्वों एवम् उनके तीनों भेदों को जानने योग्य केवलज्ञान रूप नेत्र आप धारण करते हैं, इसलिये आप ही त्रिनेत्र हैं ।

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धाऽसुर-मर्दनात् ।

अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यत: ॥८॥

अन्वयार्थ : आपने मोहरुपी अन्धासुर का नाश किया है, इसलिए आप अन्धकान्तक कहलाते हैं, आपने आठ में से चार शत्रू (अर्ध न अरि) का नाश किया है, इसलिये आपको अर्धनारीश्वर भी कहते हैं ।

शिव: शिवपदाध्यासाद् दुरिताऽरि हरो हर: ।

शंकर कृतशं लोके शंभवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥

अन्वयार्थ : आप शिवपद अर्थात मोक्ष-निवासी हैं इसलिये शिव कहे गये, पापों को हरने वाले है, इसलिये हर है, जगत का दाह शमनेवाले है इसलिए शंकर है और सुख उत्पन्न है, इसलिए शंभव कहे गये है ।

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठ: पुरु: पुरुगुणोदयै: ।

नाभेयो नाभि सम्भूतेरिक्ष्वाकु-कुल्-नन्दन: ॥१०॥

अन्वयार्थ : आप जगत में ज्येष्ठ है, इसलिए आप वृषभ है, आप संपुर्ण गुणों कि खान होने से पुरु है, नाभिपुत्र होने से नाभेय, नाभि के काल मे होनेसे नाभिसमभूत, और इक्ष्वाकू कुल मे जन्म लेने कि वजह से आपको इक्ष्वाकू कुल-नन्दन भी कहे जाते हैं ।

त्वमेक: पुरुषस्कंध स्त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।

त्वं त्रिधा बुध्द-सन्मार्ग स्त्रिज्ञ स्त्रिज्ञानधारक: ॥११॥

अन्वयार्थ : सब पुरुषों में आप ही एक श्रेष्ठ है, लोगों के दो नेत्र होने के कारण आप के दो रूप धारक है, तथा मोक्ष के तीन मार्ग के एकत्व को आपने जाना है, आप तीन काल एक साथ देख सकते है और रत्नत्रय धारक है, इसलिये आप त्रिज्ञ भी कहलाते हैं ।

चतु:शरण मांगल्य-मूर्तिस्त्वं चतुरस्त्रधी ।

पंचब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥

अन्वयार्थ : इस जगत् मे आप ही चार मांगल्यों का एकरुप हैं और आप चारों दिशाओं के समस्त पदार्थों को एकसाथ जानते है, इसलिए आप चतुरस्त्रधी कहलाते है । आप ही पंच-परमेष्ठी स्वरुप हैं, पावन करनेवाले है, मुझे भी पवित्र किजिए ।

स्वर्गाऽवतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नम: ।

जन्माभिषेक वामाय वामदेव नमोऽस्तुते ॥१३॥

अन्वयार्थ : आप स्वर्गावतरण के समय ही सद्योजात (उसी समय उत्पन्न) कहलाये थे और जन्माभिषेक के समय आप बहुत ही सुंदर दिख रहे थे, इसलिये हे वामदेव आपको नमस्कार हो ।

सन्निष्कान्ता वघोराय, पदं परममीयुषे ।

केवलज्ञान-संसिध्दा वीशानाय नमोऽस्तुते ॥१४॥

अन्वयार्थ : दीक्षा-समय मे आपने परम शान्त-मुद्रा धारण कि थी, तथा केवलज्ञान के समय आप परमपद धारी होकर ईश्वर कहलाए, इसलिये आपको नमस्कार हो ।

पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्त पदभाजिने ।

नमस्तत्पुरुषाऽवस्थां भाविनीं तेऽद्य विभ्रते ॥१५॥

अन्वयार्थ : अब आगे शुद्ध आत्म-स्वरुप के द्वारा मोक्ष को प्राप्त होंगे, तथा सिद्ध-अवस्था धारण करनेवाले हैं, इसलिये हे विभो मेरा आपको नमस्कार है ।

ज्ञानावरण-निर्हासा न्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे ।

दर्शानावरणोच्छेदा न्नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥

अन्वयार्थ : ज्ञानावरण कर्म का नाश करने से आप अनन्तज्ञानी कहलाते है और दर्शनावरण कर्म के नाशक आप विश्वदृश्वा (समस्त विश्व एक साथ देखने वाले) कहलाते है, इसलिए हे देव मेरा आपको नमस्कार है ।

नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकाऽमलदृष्टये ।

नम श्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥१७॥

अन्वयार्थ : आप दर्शन-मोहनीय कर्म का नाश करने से निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन के धारक हैं, चारित्र-मोहनीय कर्म का नाश करने से आप वीतराग एवम् तेजस्वी हैं, इसलिए हे प्रभु मेरा आपको नमस्कार है ।

नमस्तेऽनन्तवीर्याय नमोऽनन्त सुखत्मने ।

नमस्ते अनन्तलोकाय लोकालोकवलोकिने ॥१८॥

अन्वयार्थ : आप अनन्त-वीर्यधारी, अनन्त-सुख में लीन तथा लोकालोक को देखने वाले हो, इसलिए हे अनन्त-प्रकाशरूप मेरा आपको नमस्कार है ।

नमस्तेऽनन्तदानाय नमस्तेऽनन्तलब्धये ।

नमस्तेऽनन्तभोगाय नमोऽनन्तोप भोगिने ॥१९॥

अन्वयार्थ : आपके दानांतराय-कर्म का नाश हुआ है और अनन्त लब्धियों के धारक है, आपका लाभ, भोग तथा उपभोग के अंतराय कर्म का भी नाश हुआ है इसलिए हे विभो आप अनन्त भोग तथा उपभोग को प्राप्त हैं, मेरा आपको नमस्कार है ।

नम: परमयोगाय नम्स्तुभ्य मयोनये ।

नम: परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

अन्वयार्थ : हे परम देव ! आप परम-ध्यानी हैं, आप ८४ लक्ष योनी से रहित है, आप परम-पवित्र हैं, आप परम ऋषी हैं, इसलिए मेरा आपको नमस्कार हो ।

नम: परमविद्याय नम: परमतच्छिदे ।

नम: परम तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥

अन्वयार्थ : आप केवलज्ञानधारी हो, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप सब पर-मतों का नाश करनेवाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप परम-तत्त्वस्वरूप (रत्नत्रय-रूप) हैं तथा आप ही परम आत्मा हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

नम: परमरूपाय नम: परमतेजसे ।

नम: परम मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥

अन्वयार्थ : आप अति सुंदर रुप धारी परम तेजस्वी हो, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्ग-स्वरूप हैं तथा आप सर्वोच्च-स्थान में रहनेवाले परमेष्ठी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

परमर्धिजुषे धाम्ने परम ज्योतिषे नमः ।

नमः पारेतमः प्राप्त धाम्ने परतरात्मने ॥२३॥

अन्वयार्थ : आप मोक्षस्थान को सेवन करनेवाले हैं, तथा ज्योति-स्वरुप हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो । आप अज्ञानरुपी तमांधकार के पार अर्थात परमज्ञानी प्रकाशरुप हैं तथा आप सर्वोत्कृष्ट हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

नमः क्षीण कलंकाय क्षीणबन्ध! नमोऽस्तुते ।

नमस्ते क्षीण मोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ॥२४॥

अन्वयार्थ : आप कर्म-रुपी कलंक से रहित है, आप कर्मों के बन्धन से रहित है, आपके मोहनीय-कर्म नष्ट हुए हैं तथा आप सब दोषों से रहित हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

नमः सुगतये तुभ्यं शोभना गतिमियुषे ।

नमस्तेऽतीन्द्रिय ज्ञान् सुखायाऽनिन्द्रियात्मने ॥२५॥

अन्वयार्थ : आप मोक्षगति को प्राप्त हैं, इसलिए आप सुगति है, आप इन्द्रियों से ना जाने जानेवाले ज्ञान-सुख के धारी है तथा स्वयं भी अतिन्द्रिय अगोचर हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

काय बन्धन निर्मोक्षादकाय नमोऽस्तु ते ।

नमस्तुभ्य मयोगाय योगिना मधियोगिने ॥२६॥

अन्वयार्थ : शरीर बन्धन नाम-कर्म को नष्ट करने के कारण आप शरीर-रहित कहलाते है, आप मन-वच-काय योग से रहित हैं और आप योगियों में भी सर्वोत्कृष्ट है, इसलिए हे विभो ! आपको मेरा नमस्कार हो ।

अवेदाय नमस्तुभ्यम कषायाय ते नमः ।

नमः परमयोगीन्द्र वन्दिताङिंघ्रद्वयाय ते ॥२७॥

अन्वयार्थ : तीनो वेदों का नाश आपने दसवें गुणस्थान मे ही किया है, इसलिए आप अवेद कहलाते हैं, आपने कषायों का भी नाश किया इसलिए आप अकषाय कहलाते हैं, परम योगीराज भी आपके दोनों चरणकमलों को नमन करते हैं, इसलिए हे प्रभो! मेरा भी आपको नमस्कार हो ।

नम: परम विज्ञान! नम: परम संयम! ।

नम: परमदृग्दृष्ट परमार्थाय ते नम: ॥२८॥

अन्वयार्थ : हे परम विज्ञान प्रभू! हे उत्कष्ट ज्ञान धारी, हे परम संयमधारी आप परम दृष्टी से परमार्थ को देखते है तथा जगत् की रक्षा करनेवाले हैं, इसलिए मेरा आपको नमस्कार हो ।

नम्स्तुभ्य मलेश्याय शुक्ललेश्यां शकस्पृशे ।

नमो भव्येतराऽवस्था व्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥

अन्वयार्थ : हे परम देव! आप लेश्याओं से रहित हैं, तथा शुद्ध परमशुक्ल लेश्या के कुछ उत्तम अंश को स्पर्श करनेवाले हैं, आप भव्य-अभव्य दोनों अवस्थाओं से रहित हैं और मुक्तरूप हैं, इसलिए मेरा आपको नमस्कार है ।

संज्ञय संज्ञि द्वयावस्था व्यतिरिक्ताऽमलात्मने ।

नमस्ते वीत संज्ञाय नम: क्षायिकदृष्टये ॥३०॥

अन्वयार्थ : आप संज्ञी भी नही हैं, असंज्ञी भी नही हैं, आप निर्मल शुद्धात्मा धारी है, आप आहार, भय, निद्रा तथा मैथुन इन् चारों संज्ञाओं से रहित है और आप क्षायिक सम्यग्दृष्टी भी है, इसलिए हे करुणानिधान ! मेरा आपको नमस्कार हो ।

अनाहाराय तृप्ताय नम: परमभाजुषे ।

व्यतीताऽ शेषदोषाय भवाब्धे पारमीयुषे ॥३१॥

अन्वयार्थ : आप आहार ना लेते हुए भी सदैव तृप्त रहते है, अतिशय कांतियुक्त हैं, समस्त दोषों से मुक्त हैं, तथा संसाररूपी समुद्र के पार हैं, इसलिये आपको मेरा नमस्कार हो ।

अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने ।

अमृत्यवे नमस्तुभम चलायाऽक्षरात्मने ॥३२॥

अन्वयार्थ : आप जन्म, बुढापा, मृत्यु से रहित हैं, अचल हैं, अक्षरात्मा हैं इसलिये हे तारक, मेरा आपको नमस्कार हो ।

अलमास्तां गुणस्तोत्रम नन्तास्तावका गुणा ।

त्वां नामस्मृति मात्रेण पर्युपासि सिषामहे ॥३३॥

अन्वयार्थ : हे त्रिलोकिनाथ ! आपके अनंतगुण हैं (आपके सब गुणों का वर्णन असंभव है), इसलिये केवल आपके नामों का ही स्मरण करके आपकी उपासना करना चाहते हैं ।

एवं स्तुत्वा जिनं देव भक्त्या परमया सुधी: ।

पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पापशान्तये ॥३४॥

अन्वयार्थ : इस प्रकार जिनेन्द्र देव की उत्कृष्ट भक्ति करके सुधीजन आगे आये हुए एक सहस्र (१००८) नामों को निरंतर पढ़ें ।

प्रथम-अध्याय

प्रसिद्धाऽष्ट सहस्रेद्ध लक्षणं त्वां गिरांपतिम् ।

नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

अन्वयार्थ : हे भगवन, हे भवतारक! आप समस्त वाणीयों के स्वामी है, आपके एक हजार आठ लक्षण प्रसिद्ध हैं, इसलिये हम भी अपनी शुभ और इष्ट सिद्धि के लिये एक हजार आठ नामों से आपकी स्तुति करते हैं ।

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभ: शम्भव: शम्भूरात्मभू:।

स्वयंप्रभ: प्रभु र्भोक्ता विश्वभूर पुनर्भव: ॥२॥

अन्वयार्थ :

1. आप अनन्त-चतुष्टयरूपी अन्तरंग तथा समवशरण-रुपी बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित है, इसलिए **श्रीमान** (श्री-युक्त) कहलाते हैं ।
2. आप अनेक कारणों से **स्वयंभू** कहलाते है, जैसे आप अपने आप उत्पन्न हुए हैं, आप बिना गुरु के समस्त पदार्थों को जानते हैं, आप अपने ही आत्मा में रहते हैं, आपने अपने आप ही स्वयम् का कल्याण किया है, आप अपने ही गुणों से वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, अथवा आप केवल-ज्ञान-दर्शन द्वारा समस्त लोकालोक में व्याप्त हैं, अथवा आप भव्य जीवों को मोक्ष-लक्ष्मी देनेवाले हैं, अथवा समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों को आप जानते हैं, अथवा आप अनायास ही लोक-शिखर पर जाकर विराजमान होते हैं ।
3. आप वृष (धर्म) से भा (सुशोभित) है, इसलिये आप **वृषभ** हैं ।
4. आपके जन्म से ही सब जीवों को सुख मिलता है, अथवा आप सुख से उत्पन्न हुए है, अथवा आप का भव, शं (अत्युत्कृष्ट) है, इसलिए आप **शंभव** (संभव) कहलाते हैं ।
5. आप मोक्षरुप परमानंद सुख देने वाले हैं, इसलिए **शंभु** कहलाते हैं ।
6. आप अपने आत्मा के द्वारा कृतकृत्य हुए है, अथवा आप शुद्ध-बुद्ध चित् चमत्कार-स्वरुप आत्मा मे ही सदैव रहते हैं, अथवा ध्यान के द्वारा योगीयों कि आत्मा में प्रत्यक्ष होते हैं इसलिए आप **आत्मभू** कहे जाते हैं ।
7. आपको देखने के लिये प्रकाश की जरूरत नही अर्थात् आप स्वयम् ही प्रकाशमान हैं, आप स्वयम् की प्रभा मे दृग्गोचर होते हैं, इसलिए आप **स्वयंप्रभ** कहे जाते हैं ।
8. आप सबके स्वामी है, इसलिए **प्रभू** हो ।
9. परमानंद-स्वरूप सुख का उपभोग करनेवाले हैं इसलिए **भोक्ता** हो ।
10. आप समस्त विश्व मे व्याप्त हैं, या प्रकट हैं और उसे एक साथ जानते भी हैं, इसलिए **विश्वभू** हो ।
11. आपका जन्म-मरणरूपी संसार शेष नहीं है, अर्थात् आप फिर से जन्म नही लेंगे, इसलिए **अपुनर्भव** भी हैं ।

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।

विश्वविद् विश्वविद्येशो विश्व योनिरनश्वर ॥३॥

अन्वयार्थ :

12. जैसा कोई अपने आप को जानता हो, वैसे ही आप विश्व को जानते है, अथवा आप विश्व अर्थात केवलज्ञान-स्वरुप हैं, इसलिए आप **विश्वात्मा** कहे जाते हैं ।

13. समूचे विश्व के समस्त प्राणीयों के आप स्वामी अर्थात् इश हैं, इसलिए आप **विश्वलोकेश** के नाम से जाने जाते हैं ।
14. आपके केवलज्ञान् रुपी चक्षु समस्त विश्व को देख सकते है, इसलिए आप **विश्वतचक्षु** हैं ।
15. आप कभी नाश होनेवाले नहीं हैं, इसलिये आप **अक्षर** हैं ।
16. सम्पूर्ण विश्व आप को विदित है, आप उसे सम्पूर्ण तरह से जानते है, इसलिये आप **विश्ववित** हैं ।
17. विश्व की समस्त विद्याएं आपको अवगत है, अथवा सकल विद्याओं के आप ईश्वर हैं, अथवा आप सुविद्य गणधरादि के स्वामी हैं, इसलिये आप **विश्वविद्येश** कहे जाते हैं ।
18. सभी पदार्थों का ज्ञान देने वाले हैं, इस अभिप्राय से आप समस्त पदार्थों के जनक हैं, इसलिए **विश्वयोनि** कहे जाते हैं ।
19. आपके स्वरुप का कभी विनाश नही होगा इसलिए हे दयानिधान ! आप **अविनश्वर** भी कहे जाते हैं ।

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः ।

विश्वव्यापी विधिर्वेधा शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥

अन्वयार्थ :

20. समस्त लोकालोक को देखनेसे आप **विश्वदृश्वा** कहलाते हैं ।
21. आप केवलज्ञान के द्वारा समस्त जगत् मे व्याप्त हैं, तथा आप जीवों को संसार से पार कराने में समर्थ हैं तथा परम् विभुति युक्त हैं, इसलिए आप **विभु** कहे जाते हैं ।
22. करुणाकर होने से आप सब जीवों की रक्षा करते हैं, तथा चतुर्गति के जीवों के लिए परिभ्रमण से मुक्ति दाता हैं, इसलिए आप **धाता** कहे जाते हैं ।
23. जगत के स्वामी होने से आप **विश्वेश** हैं ।
24. आप के उपदेश द्वारा ही सब जीव सुख की प्राप्ति का उपाय अर्थात मोक्षमार्ग देख पाते हैं, इसलिए आप **विश्वलोचन** कहे जाते हैं ।
25. समुद्घघात के समय आप के आत्म-प्रदेश समस्त लोक को स्पर्श करते हैं, तथा केवलज्ञान से तो आप समस्त विश्व मे प्रत्यक्ष रहने से आप **विश्वव्यापी** कहे गये हैं ।
26. मोहांधकार को नष्ट करनेवाले हैं, इसलिए **विधु** कहे गये हैं ।
27. धर्म के उत्पादक रहने से आप **वेधा** कहलाते हैं ।
28. आप नित्य हैं, सदैव हैं, विद्यमान हैं, आप का नाश नही हो सकता है, इसलिये शाश्वत कहलाते हैं ।

29. जैसे समवशरण में आपके मुख चारों दिशाओं में दिखते हैं, तथा आपका समवशरण में दर्शनमात्र जीवों के चतुर्गति के नाश का कारण बनता है, अथवा जल (विश्वतोमुख) के समान कर्म-रुपी मल को धोनेवाले है, इसलिये आप **विश्वतोमुख** कहे जाते हैं ।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमुर्ति र्जिनेश्वर: ।

विश्वदृग् विश्व भूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वर: ॥५॥

अन्वयार्थ :

30. आपके अनुसार कर्म ही संसार अर्थात विश्व के चलने का कारण है, तथा आपने विश्व को उपजिवीका के लिए छह कर्मों का उपदेश दिया, इसलिए आप **विश्वकर्मा** कहे गये ।
31. आप जगत् के समस्त प्राणियों में ज्येष्ठ (ज्ञान से, ज्ञानवृद्ध) हैं, इसलिए **जगज्ज्येष्ठ** कहे जाते हैं ।
32. आप में ही समस्त विश्व के ज्ञान की प्रतिमा (मूर्ती) है, इसलिए आप **विश्वमूर्ती** कहे गये हैं ।
33. समस्त अशुभ-कर्मों का नाश करने की वजह से ४ से १२ गुणस्थान वाले जीवों को जिन कहते है आप इन सब जिनों के भी ईश्वर है, इसलिये आप **जिनेश्वर** कहे जाते हैं ।
34. समस्त जगत् को एक साथ देखने से **विश्वदृक्** हो ।
35. सब भूत (प्राणीयों) के ईश्वर होने से तथा सर्व जगत् कि लक्ष्मी के ईश होने से आप **विश्वभूतेश** कहे जाते हो ।
36. जगत्प्रकाशी आप **विश्वज्योति** भी कहे जाते हैं ।
37. आप के कोई गुरू तथा स्वामी नहीं हैं, इसलिये आप **अनीश्वर** भी कहे जाते हैं ।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पति:।

अनंतजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरऽबन्धन: ॥६॥

अन्वयार्थ :

38. आपने कर्म शत्रु तथा कषायों को जीत लिया है, इसलिये आप **जिन** हैं ।
39. आप विजयी हैं, इसलिए आप **जिष्णु** हैं ।
40. आप के आत्मा कि कोई सीमा नहीं, इसलिये आप **अमेयात्मा** भी कहे जाते हैं ।
41. आप समस्त विश्व के आराध्य है, इस लिये **विश्वरीश** हैं ।

42. जगत के भी स्वामी हैं, इसलिए **जगत्पति** हैं ।
43. मोक्ष मे बाधा लाने वाले अनंत ग्रह पर विजयी होने से, तथा अनंतज्ञान को पाने से, आप **अनंतजित** भी कहलाते हैं ।
44. आप मे आत्मा का यथार्थ स्वरुप क्या होगा इसकि कल्पना तथा चिंतन करना कि अन्य प्राणियों में नहीं है, इसलिए हे प्रभू, आप **अचिन्त्यात्मा** हो ।
45. आप सब जीवों पर बन्धु समान करुणा रखते हैं, इसलिये आप **भव्यबन्धू** कहलाते हैं ।
46. मोक्ष जाने से रोकनेवाले घातिया कर्मों से जो इतर प्राणी बंधे हुए हैं, वैसे आप बंधे हुए नही हैं, इसलिये आप **अबन्धन** भी कहे जाते हैं ।

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममय: शिव:।

पर: परतर: सूक्ष्म: परमेष्ठी सनातन: ॥७॥

अन्वयार्थ :

47. कर्मभूमी मे पुरुषार्थ करना होता है, और आप कर्मभूमी के प्रारंभ अर्थात उस धारणा से युग के प्रारंभ मे उत्पन्न हुए हैं, इसलिए आप **युगादिपुरुष** कहलाते हैं ।
48. आपसे ही यह विश्व बढ़ा है इसलिये आप **ब्रह्मा** कहे जाते हैं ।
49. आप अकेले ही पंच-परमेष्ठी स्वरुप हैं, इसलिये आप **पंचब्रह्म** कहे जाते हैं ।
50. आप परम शुद्ध हैं, इसलिये **शिव** भी कहे जाते हैं ।
51. आप जीवों को संसार के पार, मोक्ष तक, पहुंचाते हैं, इसलिए **पर** हैं ।
52. किसी भी धर्मोपदेशक से श्रेष्ठ होने से **परतर** कहे जाते हैं ।
53. आप प्रथम चारों ज्ञानों से भी नहीं जाने जा सकते है और मात्र केवलज्ञान ही आपके यथार्थ स्वरुप का ज्ञान दे सकता है, इस वजह से **सूक्ष्म** कहलाते हैं ।
54. आप परम स्थान (मोक्ष) मे स्थित हैं, इसलिए **परमेष्ठी** भी कहे जाते हैं ।
55. आप चिरंतन नित्य सत्य-स्वरुप हैं, इसलिये **सनातन** भी कहे जाते हैं ।

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्म योनिरऽयोनिज ।

मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वज: ॥८॥

अन्वयार्थ :

56. आपको देखने के लिये प्रकाश की जरुरत नहीं है, क्योंकि आप स्वयं ही प्रकाशरूप हैं, इसलिए **स्वयंज्योति** कहे जाते हैं ।
57. आप फिर से उत्पन्न नहीं होंगे, इसलिए **अज** कहे जाते है ।
58. आप अभी फिर शरीर धारण नही करेंगे, इसलिए **अजन्म** कहलाते हैं ।
59. ब्रह्म अर्थात सम्यक दर्शन ज्ञान चारित्र आप से उत्पन्न होता है, इसलिए **ब्रह्मयोनि** कहे जाते हैं ।
60. ८४ लाख योनियों से रहित होकर आप मोक्षालय मे उत्पन्न होते हैं, इसलिये **अयोनिज** अथवा जब आप सिद्धशिला पर उत्पन्न होंगे, तो आपका जन्म योनि से नही अपितु ८४ लाख योनि से रहित होने से वहाँ हुआ है ।
61. सबसे बडा शत्रु मोह-कर्म पर विजय पाने से आप **मोहारिविजयी** कहे जाते हैं ।
62. आपने कर्मरिपुओं को परास्त कर विजय पायी है, इसलिये आप **जेता** कहलाते हैं ।
63. आप जहाँ-जहाँ जाते हैं (विहार करते हैं), धर्मचक्र सदैव आपके सामने चलते रहता है, अर्थात आप धर्म के चक्र को सब जगह साथ लेकर चलते हैं इसलिए आप **धर्मचक्री** नाम से भी जाने जाते हैं ।
64. आपकी उत्तम धर्म-ध्वजा सब प्राणियों पर दया करने का संदेश देती है, दया भावना सिखाती है, इसलिये आप **दयाध्वज** भी कहे जाते हैं ।

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वराऽर्चित: ।

ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वर: ॥९॥

अन्वयार्थ :

65. आपके कर्म-शत्रु शांत हुए है, इसलिये आप **प्रशान्तारि** कहलाते हैं ।
66. आपके आत्मा मे अनंत गुण हैं और आपके आत्मा का नाश कभी नहीं होगा, अथवा आपकी आत्मा अनंतकाल तक यथास्थित रहेगी इसलिये आप **अनन्तात्मा** कहे जाते हैं ।
67. योग कर्म के आस्रव का कारण है, उस योग का ही आपने निरोध किया है, इसलिए आप **योगी** कहलाते हैं ।
68. गणधरादि योगीश्वर भी आपकी पूजा-अर्चना करते हैं, इसलिये आप **योगीश्वराऽर्चित** भी कहे जाते हैं ।
69. आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानते है, इसलिये **ब्रह्मवित्** हैं ।
70. ब्रह्म के उत्पत्ती कारण जानकर और कामदेव का नाश करने की वजह से आप **ब्रह्मतत्वज्ञ** हैं ।
71. आत्मा के समस्त तत्वों को अर्थात आत्मविद्या जानने के कारण **ब्रह्मोविद्यावित्** हैं ।
72. रत्नत्रय को सिद्ध करने वाले यतियों में भी आप श्रेष्ठ रहने से **यतीश्वर** भी कहलाते हैं ।

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः ।

सिद्धः सिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥

अन्वयार्थ :

73. जब कषाय नष्ट हो जाने से आप **शुद्ध** कहे जाते हैं ।
74. सब जानने से आप **बुद्ध** हो ।
75. आत्मा का स्वरुप जानने से **प्रबुद्धात्मा** हो ।
76. चारों पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) को सिद्ध करने से अथवा सिद्धत्व (मोक्ष) ही एकमात्र उद्देश होने से, अथवा सात तत्व तथा नौ पदार्थों की सिद्धता करने से तथा रत्नत्रय् सिद्ध करने के कारण से आप **सिद्धार्थ** कहलाते हैं ।
77. आपका शासन ही एकमात्र एकमेव है यह सिद्ध होने से आप **सिद्धशासन** कहलाते हैं ।
78. आप कर्मों का नाश करके **सिद्ध** कहलाते हैं ।
79. द्वादशांग सिद्धांतों मे पारंगत होने से आप **सिद्धांतविद्** हैं ।
80. योगी लोगों के ध्यान का विषय होने से आप **ध्येय** कहे जाते हैं ।
81. आप सिद्ध जाति के देवों द्वारा पूजे जाने से **सिध्यसाध्य** कहे जाते हैं ।
82. आप समस्त जगत के हितैषी हैं, उपकारक हैं इसलिये आप **जगद्धित्** कहलाते है।

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः ।

प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥

अन्वयार्थ :

83. आपने परिषह समभाव से सहन किये है, इसलिये **सहिष्णु** कहलाते हैं ।
84. आप आत्म-स्वरुप से अथवा स्वयं लीन रहने से कभी च्युत् नही होते इसलिये **अच्युत** कहलाए गये हैं ।
85. आपके गुण गिने नही जाते, अर्थात आपके गुणो का अंत नही इसलिए **अनंत** कहे गये हैं ।
86. आप प्रभावी हैं, शक्तिशाली हैं इसलिए **प्रभविष्णु** के नाम से जाने जाते हैं ।
87. इस जन्म में आप मोक्ष प्राप्त करेंगे अर्थात आपके सर्व भवों मे यह भव उत्कृष्ट है, इसलिए आपको **भवोद्भव** कहा जाता है ।

88. शतेंद्र के प्रभु होने का आपका स्वभाव है, इसलिए आप **प्रभूष्णु** हैं ।
89. आप अनंतवीर्य है, इसलिये आप वृद्ध नही होंगे, इसलिये आपको **अजर** कहा गया है ।
90. आपकि मृत्यु अथवा अंत नही होगा इसलिये **अजर्य** हो ।
91. आप करोड़ों सूर्यों के एकत्रित आभा से अधिक कांतिमान हैं, इसलिये **भ्राजिष्णु** हो ।
92. पूर्ण-ज्ञान के अधिपति होने से **धीश्वर** हो ।
93. आप कभी समाप्त नही होते, अर्थात कम-अधिक भी नही होंगे अर्थात आप का व्यय नही होगा इस कारण से आप **अव्यय** भी कहे जाते हैं ।

विभावसुरसम्भूष्णु: स्वयंभूष्णु: पुरातन: ।

परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वर: ॥१२॥

अन्वयार्थ :

94. आप कर्म को जलाने वाले तेज से अथवा मोहांधकार को नष्ट करनेवाले सूर्य से अथवा धर्मामृत वर्षा करनेवाले चंद्र से अथवा रागद्वेषरूपी विभाव परिणाम नाश करने से अर्थात अनेक कारणों से **विभावसु** कहे जाते हैं ।
95. आपके स्वभाव में अब संसार में उत्पन्न होना नहीं है, इसलिये **असंभूष्णु** कहलाते हैं ।
96. आप अपने आप ही प्रकाशीत हुए हैं, अर्थात प्रकट हुए हैं, इसलिये आप **स्वयंभूष्णु** कहे जाते हैं ।
97. अनदि-सिद्ध होने से **पुरातन** हो ।
98. आत्मा के परमोत्कृष्ट होने से **परमात्मा** हो ।
99. मोक्षमार्ग को प्रकाशित करनेवाले होने से **परमज्योती** हो ।
100. तीनो लोक के स्वामी होने से आप **त्रिजगत्परमेश्वर** भी कहे जाते हैं ।

द्वितीय-अध्याय

दिव्यभाषापतिर्दिव्य: पूतवाक्पूतशासन: ।

पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वर ॥१॥

अन्वयार्थ :

101. आपके लिए देव भाषा का अतिशय है, इस वजह से आप **दिव्यभाषापति** कहलाते हैं ।
102. मनोहारी तथा स्वयं-प्रकाशित होने से **दिव्य** कहे जाते हैं ।

103. आपके वाणी में कोई भी दोष नहीं है, इससे आप **पूतवाक्** हो ।

104. आपका शासन निर्दोष है, इससे **पूतशासन** भी कहे जाते हैं ।

105. आपका आत्मा पवित्र होने से तथा आप भव्य-जीवों के आत्मा को पवित्र करनेवाले रहने से **पूतात्मा** हैं ।

106. आपका केवलज्ञानरूपी तेज सर्वोत्कृष्ट होने से आप **परमज्योति** कहे जाते हैं ।

107. धर्म के अधिकारी होने से **धर्माधक्ष्य** कहे जाते हैं ।

108. इन्द्रियों के निग्रह करने के कारण अथवा इंद्रियों के दमन करने से आप **दमीश्वर** हैं ।

श्रीपतिर्भगवान अर्हन्नरजा विरजा: शुचि: ।

तीर्थकृत् केवलीशान: पूजार्हस्नातकोऽमल: ॥२॥

अन्वयार्थ :

109. मोक्षादि लक्ष्मी के स्वामी होने से **श्रीपति** हो ।

110. महाज्ञानी होने से **भगवान्** हैं ।

111. सबके आराध्य होने से **अर्हन्** हैं ।

112. कर्मरुपी कलुष-रहित होने से **अरजा** हैं ।

113. आप जीवों का कर्ममल रज दूर करनेवाले होने से **विरजा** कहे जाते हैं ।

114. आप बाह्यंतर ब्रह्म पालन करने से तथा बाह्य मलमूत्र, मोह-रहित होने से **शुचि** हैं ।

115. आप धर्मतीर्थ के प्रवर्तक रहने से **तीर्थकृत्** कहलाते हैं ।

116. आप केवलज्ञानी होने से **केवली** हैं ।

117. सबके ईश्वर होने से **इशान** हो ।

118. आठ प्रकार की पूजा अर्थात अर्घ्य के योग्य होने से **पूजार्ह** हो ।

119. सम्पूर्ण ज्ञान के धारक होने **स्नातक** हो ।

120. धातू उपधातू के रहित होने से आप **अमल** कहे जाते हैं ।

अनंतदिप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्ध: प्रजापति: ।

मुक्त: शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वर: ॥३॥

अन्वयार्थ :

121. आपके शरीर तथा ज्ञान दोनो की दिप्ती अनंत है, इसलिए आप **अनंतदिप्ति** कहे जाते हैं ।

122. आप शुद्ध ज्ञानस्वरुप आत्मा के धारी है, इसलिये आपको **ज्ञानात्मा** कहा जाता है ।

123. आप मोक्षमार्ग में स्वयं ही प्रेरित् हुए हैं, अर्थात आपने गुरु के बगैर ही ज्ञान की प्राप्ति स्वयं चिंतन से की है, इसलिये आप **स्वयंबुद्ध** हैं ।

124. आप तीन-लोकों के जीवों को उपदेश देते हैं, तथा तीन-लोक के स्वामी है, इसलिये आप **प्रजापति** हैं ।

125. आपने घातिया कर्मों से अर्थात पुन: संसार भ्रमण से मुक्ति पायी है, इस कारण से आप **मुक्त** हैं ।

126. अनंतवीर्य के धारी होने से **शक्त** हैं ।

127. दु:ख अथवा कर्म बाधा से रहित होने से **निराबाध** हो ।

128. शरीर तो आपका अब मात्र नाम के लिये, अर्थात कोई भी शरीर के वजह से होनेवाला परिषह आपका नहीं होने से **निष्कल** के नाम से अर्थात जिनका पार्थिव नहीं होता ऐसे भी जाने जाते हैं ।

129. त्रिलोकिनाथ होने से **भुवनेश्वर** कहे जाते हैं ।

निरंञ्जनो जगज्ज्योति-र्निरुक्तोक्तिर्निरामय: ।

अचल स्थिति रक्षोभ्य: कूटस्थ स्थाणु रक्षय: ॥४॥

अन्वयार्थ :

130. कर्मरूपी कलुष अर्थात अञ्जन के रहित होने से **निरञ्जन** हो ।

131. जग के लिये आप ज्ञान की ज्योति हैं, जो समस्त जीवों के लिये मार्ग-प्रकाशक है, इसलिये **जगज्ज्योति** हो ।

132. आपके वचनों के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं, कोई उक्ति आपके वचन को परास्त नहीं करती, इसलिये **निरुक्तोक्ति** हो ।

133. रोग व कर्म ना होने से **निरामय** हो ।

134. आप अनंत काल बीतने पर भी कायम, अचल रहते है, आप कालातित है इसलिये अचलास्थिती हैं ।

135. आप क्षोभ-रहित हैं, अर्थात आपकि शांति अभंग है, आप अनाकुल है इसलिए आपको **अक्षोभ्य** कहा जाता है ।

136. सदा नित्य रहने से, लोकाग्र में विराजमान रहने से आपको **कूटस्थ** कहा जाता है ।

137. आपके गमनागमन का कोई हेतु नही, कारण नही, आप सदैव स्थिर हैं, इसलिये **स्थाणु** हैं ।
138. क्षय-रहित होने से, या हीनाधिक ना होने से आप **अक्षय** हैं ।

अग्रणी ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्याय शास्त्रकृत् ।

शास्ता धर्मपति-र्धर्म्यो धर्मात्मा धर्म तीर्थकृत् ॥५॥

अन्वयार्थ :

139. आपसे ही तीर्थ शुरु होता है, अर्थात आप तीनों-लोकों में मुख्य होने से **अग्रणी** हो ।
140. गणधरों के के मुख्य होने से **ग्रामणी** हो ।
141. अग्र में रहकर प्रजा को धर्म मार्ग पर चलाने से **नेता** हो।
142. धर्म-शास्त्र को प्रथम उद्घाटित करने से **प्रणेता** कहे जाते हैं ।
143. आप नय तथा प्रमाण से न्याय-शास्त्रों के वक्ता हैं, इसलिए **न्यायशास्त्रकृत** हैं ।
144. सबको धर्म का शासन से चलने का उपदेश देनेवाले **शास्ता** हो ।
145. दशविध धर्म के स्वामि तथा व्याख्याता होने से **धर्मपति** हो ।
146. स्वयं ही धर्म का साक्षात् स्वरूप होने से **धर्म्य** हो ।
147. आप आत्मा-स्वरूप (धर्म-स्वरुप) ही रहने से **धर्मात्मा** हैं ।
148. धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक होने से **धर्मतीर्थकृत** कहलाते हैं ।

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुध: ।

वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भव: ॥६॥

अन्वयार्थ :

149. आपके ध्वज पर वृषभ का चिन्ह होने से अथवा आप स्वयं धर्म की ध्वजा के रुप में आकाश में फहराने से **वृषध्वज** हो ।
150. धर्म के स्वामी होने से **वृषाधीश** हो ।
151. धर्म को तीन-लोक में प्रसिद्ध करने से **वृषकेतु** हैं ।
152. कर्म के नाश करने हेतु आपने मात्र धर्म के आयुध धारण किये है, इसलिये **वृषायुध** हो ।
153. धर्म की वृष्टी करने वाले आप **वृष** हो ।

154. धर्म के नायक (स्वामी) होने से **धर्मपति** हो ।

155. सबके स्वामी होने से **भर्ता** हो ।

156. बैल का चिन्ह होने से अथवा बैल आपका लांछन होने से आप **वृषभांक** हो ।

157. माता के स्वप्न मे शुभ-चिन्ह वृषभ दिखने से एवं उसके उपरांत आप पैदा हुए हैं, इसलिये आप **वृषभोद्भव** हैं ।

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावन: ।

प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तक: ॥७॥

अन्वयार्थ :

158. आप हिरण्यगर्भ थे, नाभिराज के संतति हैं, इसलिये आप **हिरण्यनाभि** कहलाते हैं ।

159. आप अविनाशी हैं, यथार्थ आत्मस्वरूप हैं, इसलिए आपको **भूतात्मा** कहा जाता है ।

160. आप समस्त जीवों की रक्षा, बंधू के समान करने से **भूतभृत** कहलाते हैं ।

161. यथार्थ मंगल-स्वरूप भावना के होने से **भूतभावन** हैं ।

162. आपके जन्म से आपके वंश की वृद्धी हुई है, आपका जन्म प्रशंसनीय तथा प्रभावशाली है, इसलिये **प्रभव** हो ।

163. आपके भव समाप्त हुए हैं, अर्थात यह आपका अंतिम भव है, इसलिए **विभव** हो ।

164. आप केवलज्ञान रूप कांति से प्रकाशमान हैं इसलिये **भास्वान** हो ।

165. समय-समय से आप में उत्पाद होता रहता है, इसलिये **भव** हो ।

166. आत्म-स्वभाव में सदैव लीन होने से **भाव** हैं ।

167. समस्त भवों का नाश करनेवाले होने से आपको **भवान्तक** कहा जाता है ।

हिरण्यगर्भ: श्रीगर्भ: प्रभूत विभवोद्भव: ।

स्वयंप्रभु प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभु: ॥८॥

अन्वयार्थ :

168. गर्भावतरण के समय हिरण्य की वृष्टी होने से अथवा आपकी माता को गर्भकाल में कोई भी वेदना तथा दु:ख नहीं हुआ इसलिये आपको **हिरण्यगर्भ** कहा जाता है ।

169. आपके गर्भ में होते हुए श्री आदि देवीयाँ आपके माता की सेवा करती थीं अथवा आपके अंतरंग के स्फुरायमान लक्ष्मी विराजमान है, इसलिये **श्रीगर्भ** हो ।

170. भावों का नाश करनेवाले में आप प्रभु है, अथवा आप अनन्त-विभूति के स्वामी हैं इसलिये **प्रभूतविभव** हैं ।

171. अब जन्म-रहित हिं, इसलिये **अभव** हैं ।

172. स्वयं-समर्थ होने से अथवा आप ही खुद आपके स्वामी होने से अथवा आपका कोई स्वामी ना होने से आपको **स्वयंप्रभु** भी कहा जाता है ।

173. केवलज्ञान के द्वारा आप सब आत्माओं में व्याप्त होने से अर्थात जो भी जिसके अंतर में है, आपके जानने से **प्रभूतात्मा** हैं ।

174. समस्त जीवों के नाथ अथवा स्वामी होने से **भूतनाथ** हो ।

175. तीनों-लोक अर्थात सम्पूर्ण जगत के स्वामी होने से आप **जगत्पति** भी कहे जाते हैं ।

सर्वादि: सर्वदृक् सार्व: सर्वज्ञ: सर्वदर्शन: ।

सर्वात्मा सर्वलोकेश: सर्ववित् सर्व लोकजित् ॥९॥

अन्वयार्थ :

176. आप सब में प्रथम होने से **सर्वादि** हैं ।

177. केवलज्ञान द्वारा लोकालोक सहज ही देखने से **सर्वदृक्** हैं ।

178. कल्याणकारी हितोपदेश देने से **सार्व** हैं ।

179. सर्व विश्व का सर्व विषय एक साथ जानने से **सर्वज्ञ** हैं ।

180. सर्वार्थ से सम्यग्दर्शन धारी होने से **सर्वदर्शन** हैं ।

181. समस्त जगत के जीवों के प्रिय रहने से **सर्वात्मा** हैं ।

182. समस्त लोक अर्थात तीन-लोक के स्वामी होने से **सर्वलोकेश** हैं ।

183. आपको सर्व विद् है, अर्थात ज्ञात है, इसलिये **सर्वविद्** हो ।

184. तीन लोक को जीतने से या अनंतवीर्य होने से आपको **सर्वलोकजित्** भी कहा जाता हैं ।

सुगति: सुश्रुत: सुश्रुत सुवाक सुरिर्बहुश्रुत: ।

विश्रुतो विश्वत: पादो विश्वशिर्ष: शुचिश्रवा: ॥१०॥

अन्वयार्थ :

185. आपका ज्ञान प्रशंसनीय है, सुगति देनेवाला है, तथा आपकी अगली गति (पंचम गति अर्थात मोक्ष) है, इसलिए आपको **सुगति** कहते हैं ।

186. आपका ज्ञान अत्युत्तम है तथा आपके बारे में सबने सुना है, अर्थात आप प्रसिद्ध है इसलिये **सुश्रुत:** हो ।

187. आप समस्त भक्तों की भावना अच्छे से सुनते हैं इसलिये **सुश्रुत्** हैं ।

188. आपकी वाणी हितोपदेशी है तथा सप्त-भंगरूप होने से सम्पुर्ण है इसलिये **सुवाक्** हैं ।

189. सबके गुरु होने से **सुरि** हो ।

190. शास्त्रों मे पारंगत होने से **बहुश्रुत** हो ।

191. आप जगत में प्रसिद्ध हैं तथा कोई भी शास्त्र में आपका यथार्थ वर्णन ना पाया जाने से आप **विश्रुत** हो ।

192. लोक के अग्र में जाकर आप विराजमान होने वाले है, इसलिये **विश्वशिर्ष** हो ।

193. आप का ज्ञान निर्दोष है, निर्मल है, शुचित है, इसलिये आपको **शुचिश्रवा** भी कहा जाता है ।

सहस्रशीर्ष: क्षेत्रज्ञ: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।

भूतभव्य भवद्भर्ता विश्वविद्या महेश्वर: ॥११॥

अन्वयार्थ :

195. आप के मानो सहस्र शीर्ष है, अर्थात सहस्र प्रकार के बुद्धी के धारक हैं इसलिए **सहस्रशीर्ष** हो ।

196. आप लोकालोक समस्त क्षेत्र के समस्त पदार्थों के समस्त पर्यायों को जानते हैं, या आप समस्त क्षेत्रों मे केवलज्ञान द्वारा व्याप्त हैं, इसलिये **क्षेत्रज्ञ** हैं ।

197. आप मानो सहस्र नेत्रों से देख रहे हो, अर्थात आपकी दृष्टी अपार, अथाह है, इसलिये **सहस्रदर्शी** हैं ।

198. अनंतवीर्य होने से आपके बल के बारे मे आपको **सहस्रपात्** भी कहा जाता है ।

199. वर्तमान, भूत तथा भविष्य तीनों काल के स्वामी तथा तीनों काल के जीवों के बंधु-समान होने से **भूतभव्यभवद्भर्ता** हो ।

200. समस्त-विश्व के समस्त श्रेष्ठ विद्याओं में पारंगत होने से तथा आपके समान इन विद्याओं में कोई और पारंगत नहीं है, इसलिये **विश्वविद्यामहेश्वर** भी आपको ही कहा जाता है, यह नाम आपके अलावा किसी और का हो ही नहीं सकता ।

॥इति दिव्यादिशतम्॥

तृतीय-अध्याय

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।

स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽ णिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥

अन्वयार्थ :

201. आपने मानों समस्त जीवों को अपने उपदेश द्वारा अवकाश दिया है, अर्थात कैसे रहना बताया है, ऐसि स्थिर शक्ति होने से आपको **स्थविष्ठ** कहा जाता है ।

202. अनादि अनंत होने से आप अत्यंत वृद्ध है, इसलिये **स्थविर** भी कहे जाते हैं ।

203. आप सब जीवों में मुख्य हैं, अर्थात गुण, बल, सुख, ज्ञान से आप सब में मुख्य हैं, इसलिये आप **ज्येष्ठ** हो ।

204. सबसे अग्रसर या नेता होने से **पृष्ठ** हो ।

205. सब में प्रिय होने से **प्रेष्ठ** हो ।

206. अतिशय बुद्धि के धारी होने से **वरिष्ठधी** हो ।

207. अत्यंत स्थिर अर्थात अविनाशी होने से **स्थेष्ठ** हो ।

208. सबके गुरु होने से या सबके महान होने से **गरिष्ठ** हो ।

209. आपके दृष्य स्वरुप से परे अनंत स्वरुप होने से अथवा अनन्त गुणों के धारक होने से **बंहिष्ठ** हो ।

210. सबसे प्रशंसनीय होने से अथवा सबमे महान होने से **श्रेष्ठ** हो ।

211. मात्र केवलज्ञान के गोचर होने से अथवा अतिशय सुक्ष्म होने से **अनिष्ठ** हो ।

212. आपकी कल्याणकारी हितोपदेशी वाणी सबको पुज्य होने से आपको **गरिष्ठगी** भी कहा जाता है ।

विश्वभृद् विश्वसृड् विश्वेड् विश्वभृग् विश्वनायकः ।

विश्वाशीर्विश्वरुपात्मा विश्वजित् विजितान्तकः ॥२॥

अन्वयार्थ :

213. चतुर्गति विश्व अर्थात संसार का नाश करने से आप **विश्वभृद्** हो ।
214. विश्व के विधि-विधान के सर्जन होने से **विश्वसृड्** हो ।
215. तीन लोकों में श्रेष्ठ होने से या तीन लोक रुपी भुवन के स्वामी होने से **विश्वेट्** हो ।
216. विश्व के रक्षक अर्थात कर्मशत्रु से रक्षा करनेवाला उपदेश देने से **विश्वसृक्** हो ।
217. सब विश्व के नाथ होने से अग्रणीय होने से उनका नेता रहने से **विश्वनायक** हो ।
218. समस्त प्राणीयों के विश्वास-योग्य होने से तथा अपने केवलज्ञान से तीन लोक मे निवास करने से **विश्वाशी** हो ।
219. सम्पूर्ण विश्व का स्वरुप आपके आत्मा मे होने से अथवा केवलज्ञान जो समस्त विश्वरुपी है, जो आपके आत्मा का स्वरुप होने से **विश्वरुपात्मा** हो ।
220. आपने सदैव चलने वाले संसार को अपने आत्मस्वरुप से जीत लिया है, अर्थात आपके समक्ष संसार भी हार जाने से **विश्वजित्** हो ।
221. अन्तक अर्थात नाश करनेवाले काल के उपर विजय पाने से आपको **विजितान्तक** भी कहा जाता है ।

विभावो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन् ।

विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥

अन्वयार्थ :

222. किसी भी तरह के मनोविकार अर्थात भाव नहीं रहने से **विभाव** हो ।
223. भय-रहित होने से अर्थात आपके शत्रु ही नहीं है, तब भय कहाँ से हो अतः **विभय** हो ।
224. अनंतवीर्य होने से **वीर** हो ।
225. शोक अर्थात दुःख-रहित होने से अर्थात अनंत-सुख के स्वामी होने से **विशोक** हो ।
226. जरा-रहित अर्थात आप् कदापि जरावस्था को प्राप्त नहीं होंगे इसलिये **विजर** हो ।
227. लेकिन अनादिकालीन होने से **जर-वृद्ध** हो ।

228. राग-रहित होने से **विराग** हो ।
229. विषय-रहित होने से **विरत** हो ।
230. स्व मे रमण रहने से अर्थात पर का कोई संग नहीं रहने से **असंग** हो ।
231. एकाकि होने से अथवा स्वभाव मे रहने से मात्र स्वयम् का साथ होने से **विविक्त** हो ।
232. किसी से इर्ष्या, द्वेष, मत्सर ना होने से आप **वीतमत्सर** भी कहलाते हैं ।

विनेय जनता बंधु र्विलीना शेष कल्मष: ।

वियोगो योगविद् विद्वान् विधाता सुविधि सुधी: ॥४॥

अन्वयार्थ :

233. जो आपके लिये विनय धारण करते है, आपकी भक्ति करते है, प्रार्थना करते है, ऐसे जनों के बन्धू अर्थात उनके हितैषी होने से आप **विनेयजनताबंधु** हो ।
234. समस्त कर्मरुपी कालिमा से रहीत होने से **विलीनाशेषकल्मष** हो ।
235. मन, वच, काय से किसी भी पर-पदार्थ के कोई भी योग ना होने से **वियोग** हो ।
236. योग के ज्ञाता होने से **योगवित्** हो ।
237. सम्पूर्ण ज्ञान के धारी होने से **विद्वान** हो ।
238. धर्म रूपी सृष्टी से कर्ता होने से अथवा सबके गुरु होने से **विधाता** हो ।
239. आपकी समस्त क्रिया अत्यंत प्रशंसनीय होने से **सुविधी** हो ।
240. अतिशय बुद्धिमान होने से **सुधी** कहलाते हैं ।

क्षान्ति भाक् पृथ्वीमूर्ति: शान्ति भाक् सलिलात्मक: ।

वायुमूर्ति रसंगात्मा वन्हि मूर्ति धर्मधृक् ॥५॥

अन्वयार्थ :

241. उत्तम क्षमा को धारण करनेवाले होने से **क्षान्तिभाक्** हो ।
242. पृथ्वी के समान सहनशीलता होने से **पृथ्वीमूर्ति** हो ।
243. शांत होने से **शान्तिभाक्** हो ।

244. जल के समान निर्मल होने से अथवा जल के समान सब का कर्म-मल धोनेवाले होने से **सलीलात्मक** हो ।

245. वायु समस्त जीवों को स्पर्श करते हुए किसी से संबंध नहीं बनाती ऐसे होने से **वायुमूर्ति** हो ।

246. सम्पूर्ण परिग्रह-रहित होने से (आप बहिरंग तथा अंतरंग लक्ष्मी के स्वामी होते हुए भी) **असंगात्मा** हो ।

247. आपने अग्नि के समान कर्मरुपी इंधन को जलाने से अथवा अग्नि के समान ही उर्ध्वगमन (सिद्धशीला) का स्वभाव होने से **वन्हिमूर्ति** हो ।

248. अधर्म का नाश करने से **अधर्मधृक्** भी कहे जाते हैं ।

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सूत्राम पूजित: ।

ऋत्विग्यज्ञ पति र्यज्ञो यज्ञांगम मृतं हवि: ॥६॥

अन्वयार्थ :

249. जैसे यज्ञ मे सामग्री का होम किया जाता है, वैसे ही आपने कर्मरुपी सामग्री को जलाया है, इसलिये आपको **सुयज्वा** कहा जाता है ।

250. स्वयं के आत्मा की ही अथवा स्वभाव भाव की आराधना करने से अथवा भाव-पूजा के कर्ता होने से **यजमानात्मा** हो ।

251. सदैव परमानंद समुद्र में अभिषिक्त रहने से **सुत्वा** हो ।

252. इन्द्र के द्वारा पूजित होने से **सूत्रामपूजित** हो ।

253. ध्यानरुप अग्नि मे कर्म को भस्म करने से अथवा ज्ञानरुपी यज्ञ के कर्ता होने से **ऋत्विक** हो ।

254. ज्ञान यज्ञ के अधिकारी जनों में प्रमुख होने से **यज्ञपति** हो ।

255. जैसे यज्ञ किसी पूज्य के लिये किया जाता है, वैसे ही आप सबके पूज्य हैं, इसलिये **यज्य** हो ।

256. यज्ञ के लिये मुख्य कारण होने से अथवा सबके पूज्य होने से **यज्ञांग** हो ।

257. मरण-रहित होने से अथवा संसार तृष्णा को शांत करनेवाला उपदेश देनेवाले होने से **अमृत्** हो ।

258. स्वात्मालीन रहने से **हवि** भी कहलाते हैं ।

व्योम मुर्ति मूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोचल: ।

सोममूर्ति: सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्ति र्महाप्रभ: ॥७॥

अन्वयार्थ :

259. आकाश के समान निर्मल होने से तथा सर्वत्र व्याप्त होने से **व्योममूर्ति** हो ।
260. रूप, रस, गंध व स्पर्श रहित होने से **अमूर्तात्मा** हो ।
261. निष्कर्म अथवा कर्मरुपी लेप-रहित होने से **निर्लेप** हो ।
262. रागादि अथवा मल-मूत्रादि दोष-रहित होने से **निर्मल** हो ।
263. सर्वदा स्थिर अर्थात सतत होने से **अचल** हो ।
264. चंद्रमा के समान शीतलता प्रदान करने वाले होने से **सोममूर्ति** हो ।
265. अत्यंत सौम्य होने से **सुसौम्यात्मा** हो ।
266. सूर्य के समान आभा तथा कांतिमान होने से **सूर्यमूर्ति** हो ।
267. अत्यंत तेजोमय होने से अथवा प्रभावशाली होने से **महाप्रभ** कहलाते हैं ।

मन्त्रविन् मन्त्रकृन् मन्त्री मन्त्रमूर्ति रनन्तग: ।

स्वतन्त्र स्तन्त्र कृत्स्वन्त: कृतान्तान्त: कृतान्त कृत् ॥८॥

अन्वयार्थ :

268. सकल मंत्रो के ज्ञाता होने से **मन्त्रवित्** हो ।
269. आपने जो चार अनुयोग बताये है, वे मन्त्र के समान जप करने योग्य होने से आप को **मन्त्रकृत्** हो ।
270. स्वात्मा की मंत्रणा करने से अथवा प्रमुख रहने से अथवा लोक के रक्षक होने से आप **मंत्री** हो ।
271. स्वयं भी आप जप अथवा चिंतन करने योग्य होने से **मन्त्रमूर्ति** हो ।
272. अनंतज्ञान धारी होने से **अनंतग** हो ।
273. आपका सिद्धांत आत्मा ही होने से **स्वतंत्र** हो ।
274. आगम अथवा धर्मतंत्र के प्रणेता होने से **तन्त्रकृत्** हो ।
275. शुद्ध अंतकरण होने से **स्वंत** हो ।

276. यम का अर्थात मरण का नाश करने से **कृतान्तान्त** हो ।

277. पुण्य-वृद्धी का कारण होने से अथवा धर्म का कारण होने से **कृतान्तकृत** भी कहे जाते हैं ।

कृती कृतार्थ: सत्कृत्य: कृतकृत्य: कृतक्रतु: ।

नित्यो मृत्युञ्जयो मृत्युर मृतात्माऽमृतोद्भव: ॥९॥

अन्वयार्थ :

278. मोक्ष-मार्ग मे पारंगत अथवा प्रवीण होने से अथवा हरिहरादि से पूजित होने से **कृती** हो ।

279. मोक्षरुप अंतीम साध्य पानेवाले होने से **कृतार्थ** हो ।

280. जो पुरुषार्थ आपने मोक्षमार्ग के लिये किया वह अत्यंत प्रशंसनीय होने से **सत्कृत्य** हो ।

281. आपने मोक्ष पाने तक के सब कार्य कर लिये है, अर्थात आपके करनेयोग्य अब् कोई कार्य नहीं रहनेसे आप संतुष्ट है, **कृतकृत्य** हैं ।

282. ध्यान से आपने कर्म, नोकर्म को भस्म किया है, ज्ञानरुपी यज्ञ भी सम्पूर्ण किया है तथा आपकी तप्श्चर्या का यज्ञ तक सफल समापन होने से **कृतक्रतु** हो ।

283. आप सदैव हैं, इससे आपको **नित्य** भी कहा जाता है ।

284. मृत्यु को परास्त करने से **मृत्युंजय** हो ।

285. आप की आत्मा अमर है तथा आप अभी मृत्यु को कभी प्राप्त नहीं होंगे इसलिये **अमृत्यु** हैं ।

286. अविनाशी आत्मा मात्र रहने से आप **अमृतात्मा** हो ।

287. आपके अमृतमय मोक्षमार्ग के उपदेश से समस्त जीवों को अमर होने का मार्ग ज्ञात होने से **अमृतोद्भव** हैं ।

ब्रह्मनिष्ठ परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभव: ।

महाब्रह्म पतिर्ब्रह्मेड् महाब्रह्म पदेश्वर ॥१०॥

अन्वयार्थ :

288. आत्मब्रह्म मे लीन रहने से **ब्रह्मनिष्ठ** हो ।

289. सर्व ज्ञान मे उत्कृष्ट ज्ञान -केवलज्ञान आत्मा मे धारण करने से **परंब्रह्म** हो ।

290. आपके आत्मा का केवलज्ञान स्वरुप होने से **ब्रह्मात्मा** हो ।

291. आपसे केवल् ज्ञान की उत्पत्ति होती है, तथा शुद्धात्मा की प्राप्ति होति है, इसलिये **ब्रह्मसंभव** हो ।

292. चार ज्ञान के धारी गणधरादि के स्वामी, पूज्य होने से **महाब्रह्मपति** हो ।

293. समस्त केवली मे प्रधान होने से **ब्रह्मेट्** हो ।

294. मोक्षपद के अर्थात महा-ब्रह्मपद के अधिकारी होने से आपको **महाब्रह्मपदेश्वर** कहा जाता है ।

सुप्रसन्न: प्रसनात्मा ज्ञानधर्म दमप्रभु ।

प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराण पुरुषोत्तम: ॥११॥

अन्वयार्थ :

295. स्वात्मानुभूति के आनंद मे लीन रहने से तथा सदैव प्रसन्न रहकर भक्तों को देनेवाले होने से **सुप्रसन्न** हो ।

296. आपके आत्मा मे कोई मल नही, अर्थात वह भी प्रसन्न है इसलिये **प्रसन्नात्मा** हो ।

297. केवलज्ञान, दशविध धर्म तथा इंद्रिय-निग्रह के स्वामी होने से **ज्ञानधर्मदमप्रभु** हो ।

298. क्रोधादि कषायों को शमन की हुइ आत्मा होने से **प्रशमात्मा** हो ।

299. आपका दर्शन भी परम शान्ति प्रदान करता है, आपकी आत्मा भी परमशान्त है, तथा आपक उपदेश भी परम-शान्ति देनेवाला पद का मार्ग दिखाता है, इसलिये हे विभो आपको **प्रशान्तात्मा** कहा है ।

300. अनादि काल से जितने भी पुरुष हुए है, उन सबमें आप उत्कृष्ट रहने से आप **पुराणपुरुषोत्तम** हो ।

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥३॥

चतुर्थ-अध्याय

महाऽशोक ध्वजोऽशोक: क: स्रष्टा पद्मविष्टर: ।

पद्मेश पद्मसम्भूति: पद्मनाभि रनुत्तर: ॥१॥

अन्वयार्थ :

301. आपके अष्ट प्रातिहार्यों में महा अशोकवृक्ष हैं, इसलिए आपको **महाऽशोकध्वजा** कहा जाता है ।

302. आपने शोक को नष्ट किया है इसलिये **अशोक** हैं ।

303. सबसे सुख देने वाले या सब में ज्येष्ठ होने से **क** हो ।

304. मोक्षमार्ग की शुरुवात करने से **स्रष्टा** हो ।

305. आप कमलासन पर विराजमान हैं, जो की देवकृत है, इसलिये **पद्मविष्टर** हैं ।

306. अंतरंग लक्ष्मी (अनंत सुख, वीर्य, ज्ञान, दर्शन) तथा बहिरंग लक्ष्मी (समवशरण, प्रातिहार्य, अतिशय) होने से **पद्मेश** हो ।

307. समवशरण के उपरांत जब भी आप विहार करते हो, तब आपके चरणों के नीचे देवकृत अतिशय से कमलों की रचना होती हैं, यद्यपि आप उन्हे स्पर्श करे बगैर ही अधर में चलते हैं, तो उस कमल रचना से **पद्मसंभूति** कहे जाते हो ।

308. कमल के समान नेत्र-सुखद नाभी होने से **पद्मनाभ** हो ।

309. आपके समान कोई और नही है, ना होगा इस् कारण से आपको **अनुत्तर** नाम से भी सम्बोधा जाता है ।

पद्मयोनि र्जगद्यो निरित्य: स्तुत्य: स्तुतिश्वर: ।

स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेय कृतक्रिय: ॥२॥

अन्वयार्थ :

310. आपके अंतरंग से और उस निमित्त से बहिरंग लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है, इसलिये आप **पद्मयोनि** हो अर्थात लक्ष्मी को जन्म देनेवाले कहा जाता है ।

311. जगत् की उत्पत्ती के भी कारण आप हैं, क्योंकि आपने ही जगत के प्राणीयों को जीने की राह दी है, इसलिये **जगतयोनि** हो ।

312. आपके होने का ज्ञान होने से अथवा आप जो जानना चाहें उसका ज्ञान होने से आपको **इत्य** नाम कहा जाता है (यहाँ यह बताये की येशु को भी इत्य नाम से जाना जाता हैं, जो है = इत्य) ।

313. सबके द्वारा प्रशंसनीय होने से स्तुति-योग्य होने से **स्तुत्य** हो ।

314. समस्त स्तुतियों में आपकी स्तुति श्रेष्ठ होने से **स्तुतिश्वर** हो ।

315. ऐसि उत्कृष्ट स्तुतियों के पात्र होने से या ऐसी स्तुति के लिये श्रेष्ठ होने से **स्तवनार्ह** हो ।

316. आपने इन्द्रियों पर विजय पाकर उन्हे दास बनाया, अपने वश में किया है, इसलिये आप हृषिक + इश = **हृषीकेश** कहलाते हैं ।

317. जिन पर विजय पानी चाहिये अर्थात जो जेय हैं, उन्हे जीतने के कारण आप **जितजेय** हैं ।

318. शुद्धात्मा की प्राप्ति के पुरुषार्थ के लिये आपने सारे कृत्य पूर्ण किये इस लिये आप **कृतक्रिय** हैं ।

गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्य: पुण्यो गणाग्रणी: ।

गुणाकारो गुणाम्बोधि र्गुणज्ञो गुणनायक: ॥३॥

अन्वयार्थ :

319. बारह प्रकार की सभाएं आपके स्वामित्व में समवशरण होती हैं, इसलिए **गणाधिप** हो ।

320. समस्त चतुर्विध संघ में मुख्य होने से **गणज्येष्ठ** हो ।

321. आपके केवल ज्ञानोपदेश में जन ऐसे आनंदित होते हैं, जैसे दिव्य उपवन में विहर रहे हो, इसलिये आपको **गण्य** कहते हैं ।

322. आप स्वयं ही पुण्यरुप हैं, इसलिये **पुण्य** हो ।

323. सब जन, गण के अग्रणी होने से **गणाग्रणी** हो ।

324. गुणो के खान, भंडार होने से तथा गुणों कि वृद्धि करने वाला उपदेश देने से **गुणाकर** हो ।

325. जितने समुद्र में रत्न हैं, उतने आपके गुण हैं, अत: **गुणाम्बोधि** हो ।

326. समस्त गुण, उनकी उत्पत्ती, उनके धारण करने से आनेवाली विशुद्धी को जानने से आप **गुणज्ञ** हो ।

327. इन सब गुणो के नेता होने से आपको **गुणनायक** भी कहा जाता है ।

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुण पुण्यगीर्गुण: ।

शरण्य: पुण्यवाक्पूतो वरेण्य: पुण्यनायक: ॥४॥

अन्वयार्थ :

328. आप मात्र गुणों के धारक ही नही, गुणों का सम्मान भी करते हैं, इसलिए **गुणादरी** हो ।

329. अवगुणों का नाश करने से अथवा इंद्रिय इच्छाओं का दमन करने से **गुणोच्छेदी** हो ।

330. विशेष आकार रहित होने से या विभाव नाश करने से अथवा गुण होनेवाले किसी भी वस्तु का आपका संबध का अभाव होने से आपको **निर्गुण** कहा जाता है ।

331. आपकी वाणी को सुनना पुण्यार्जन करानेवाला है, इसलिये आप **पुण्यगी** हो ।

332. आप स्वयं ही शुद्ध गुण-स्वरुप हैं, **गुण** हैं ।

333. जिसे शरण जाया जाये ऐसे एकमात्र होने से **शरण्यभूत** हो ।

334. जैसा आपका उपदेश पुण्यरुप है, वैसे ही आपके वचन मात्र सुनने से पुण्य प्राप्त होता है, आपके वचन सुनने मात्र से पुण्य प्राप्त होता है, इसलिये **पुण्यवाक्** हो ।

335. पूजित, पूज्य, पुण्यस्वरूप होने से **पूत्** हो ।

336. आप सर्वोपरी होने से, सबमें श्रेष्ठ होने से **वरेण्य** हो ।

337. पुण्य के स्वामी होने से आपको **पुण्यनायक** कहा जाता है ।

अगण्य: पुण्यधीर्गुण्य: पुण्यकृत्पुण्यशासन: ।

धर्मारामो गुणग्राम: पुण्यापुण्य निरोधक: ॥५॥

अन्वयार्थ :

338. आप संसार के जनों में अब गिने नही जायेंगे अथवा आपके गुण अनंत होने से आप **अगण्य** हैं ।

339. आपका ज्ञान यथार्थ होने से साथ पूण्यकारक हैं, इसलिये **पुण्यधी** हैं ।

340. जिनके लिये समवशरण की दिव्य रचना होती है, उनमे आप **गण्य** हैं ।

341. पुण्य के कर्ता है इसलिये **पुण्यकृत्** हैं ।

342. आपने उपदेशित धर्मशासन पुण्यरुप है, इसलिये **पुण्यशासन** हैं ।

343. धर्म, सत्य, गुण तथा ज्ञान के समुह के धारक होने से **धर्माराम** हैं ।

344. आप **गुणग्राम** हैं ।

345. मोक्ष के लिये आपने पाप और पुण्य दोनों का निरोध किया है, क्योंकि मात्र पाप का नाश मोक्ष प्राप्ती के लिये पर्याप्त नही है इसलिये **पुण्यापुण्यनिरोधक** भी कहे जाते हैं ।

पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः ।

निर्द्वंद्वो निर्मद]] शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥

अन्वयार्थ :

346. आप **पापापेत** है ।
347. **विपापात्मा** हैं ।
348. **विपात्मा** हैं ।
349. कर्ममल रहित विशुद्ध होने से आप **वीतकल्मष** हैं ।
350. स्व और पर का द्वंद्व समाप्त करने से **निर्द्वंद्व** हैं ।
351. अहंकार, मान, मद रहित होने से **निर्मद** हैं ।
352. आपके भाव मृदु / शान्त होने से **शान्त** हैं ।
353. मोह, इच्छा आदि रहित होने से **निर्मोह** हैं ।
354. आपसे किसी को भी उपद्रव नही होता, आपके चलने से (अधर), बैठने से (अधर) वचन से (ओष्ठ ना हिलने से) किसी को भी कोई भी उपद्रव अथवा आक्रमण नही होता इसलिये **निरुपद्रव** कहा जाता है ।

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः ।

निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निरास्रवः ॥७॥

अन्वयार्थ :

355. आपके परिषह जयी होने से आप पलक नही झपकते अर्थात आपकी दृष्टी अपलक इसलिये आपको **निर्निमेष** कहते हैं ।
356. आपको द्रव्याहार की जरुरत नही हैं, आपको दिव्य वर्गणा से आहार प्राप्त होता है, अर्थात आप **निराहार** हो ।
357. आपने सब क्रियाए बंद करी हैं, अथवा आपके कोई भी क्रिया से हलन-चलन से कोई हिंसा नही होती, इसलिये आप **निष्क्रिय** हैं ।
358. आपने सारे कर्मरुपी संकटों का नाश किया अथवा आप संकट-रहित हैं, अथवा आपके सानिध्य में संकट नही आ सकता इसलिये आप **निरुपप्लव** हो ।

359. सर्व कर्म-मैल हट जाने से, अथवा आपके आत्मा में कलुषितता का अभाव होने से **निष्कलंक** हो ।

360. पाप को, पुण्य को, कर्म को अर्थात मोक्ष के मार्ग में अटकाव करनेवाले सबको आपने परास्त किया हैं, इसलिये आप **निरस्तैना** हो ।

361. अपने स्वयं से चिपके हुए सब मैल को आपने धो दिया है, अपनी आत्मा को परमशुक्ल बनाया है, इसलिये आपको **निर्धूतांग** कहा है ।

362. आपके कर्म आस्रव बंद होने से, रुकने से, फिर कभी ना आ पाने से आपको **निरास्रव** भी कहा जाता है ।

विशालो विपुल ज्योतिरतिलोऽ चिन्त्यवैभव: ।

सुसंवृत: सुगुप्तात्मा सुभूत् सुनय तत्त्ववित् ॥८॥

अन्वयार्थ :

363. आप बृहद् हैं, महान है इसलिये **विशाल** हैं ।

364. केवलज्ञान रुप अपार, अखण्ड ज्योति के धारक **विपुलज्योति** हैं ।

365. आप अनुपम हैं, आपकी तुलना किसी से भी नही हो सकती अथवा किसी भी वस्तु के साथ आपको तोला नही जा सकता इस लिये **अतुल** हैं ।

366. आपका केवलज्ञानरुपी अंतरंग वैभव कल्पना से परे है, अथवा आपके विभुति का कोई भी यथार्थ समुचित चिंतवन नही कर सकता इतनी आपकी विभुति अगम्य है, आप **अचिन्त्यवैभव** हैं ।

367. आपके सर्व ओर ज्ञानी गणधर विराजमान रहते हैं, अर्थात आप सुजनों से घिरे हुए रहते हैं, अथवा सुजन सदैव आपके आसपास आकर रुके रहते हैं, इसलिये **सुसंवृत्** हो ।

368. अभी आपकी आत्मा किसी भी कर्मास्रव को दृगोचर नही होती, उनके लिये वह गुप्त हो गयी हैं, इसलिये **सुगुप्तात्मा** हो ।

369. आप उत्तम ज्ञाता होने से अथवा आप का होना उत्तम होने से अथवा आप सर्वोत्तम होने से आप **सुभूत** हैं ।

370. सप्तनयों को यथार्थ में जानने से, अथवा सब वस्तु तथा घटनाओं को सप्तनयों से समझाने से आपको **सुनयतत्त्ववित्** भी कहा जाता है ।

एकविद्यो महाविद्यो मुनि: परिवृढ: पति: ।

धीशो विद्यानिधि: साक्षी विनेता विहतान्तक: ॥९॥

अन्वयार्थ :

371. एक ज्ञान के धारी **एकविद्य** हो ।
372. अनेक विद्याओं के ज्ञान तथा पारंगत होने से **महाविद्य** हो ।
373. प्रत्यक्ष ज्ञान के धारी होने से **मुनि** हो ।
374. तपस्वीयों के भी ज्ञान वृद्ध होने से **परिवृढ** हो ।
375. जगत-रक्षक होने से **पति** हो ।
376. बुद्धी आपकी दासी है इसलिये **धीश** हो ।
377. सागर में जितना जल है, उससे भी ज्यादा आपका ज्ञान होने से अथवा ज्ञान के सागर होने से **विद्यानिधी** है ।
378. त्रैलोक्य में घटने वाली घटना आपको ऐसे झलकती है, जैसे आप वहाँ हो, इस तरह से हर घटना के आप **साक्षी** हो ।
379. मात्र मोक्षमार्ग कथन करने में ही दृढ रहने से **विनेता** हो ।
380. मृत्यु का नाश करनेसे आपको **विहतांतक** भी कहा जाता है ।

पिता पितामह पाता पवित्र: पावनो गति: ।

त्राता भिषग्वरो वर्यो वरद: परम: पुमान् ॥ १०॥

अन्वयार्थ :

381. एक **पिता** के समान आप भव्यों को नरकादि गतियों से बचने का उपदेश देते है अथवा बचाते हैं ।
382. सबके गुरु होने से सब में ज्येष्ठ होने से आप **पितामह** हैं ।
383. सबको रास्ता दिखाने से अथवा सब ही जीव आगे आपके ही मार्ग पर चलने से जैसे आपके वंशज हैं, इसलिये आप **पाता** हो ।
384. आप स्वयं पवित्र हो तथा समस्त जनों के लिये भी **पवित्र** हो ।
385. दुरितों को पवित्र करने से आप **पावन** हो ।

386. आप ज्ञान-स्वरुप अर्थात **गति** हो ।

387. भव-तारक होने से आप **त्राता** हो ।

388. जैसे उत्तम वैद्य का नाम लेते ही अनेक रोग दूर हो जाते हैं, तत्सम आपका नाम-मात्र भी जन्म, जरा, मरणरुपी रोगों से मुक्ति दिलानेवाला है इसलिये आप उत्तम वैद्य अर्थात **भिषग्वर** कहलाते हो ।

389. आप सबमे श्रेष्ठ होने से **वर्य** हो ।

390. मोक्ष का वरदान देने से **वरद** हो तथा आप समस्त जनों को वरदान से प्राप्त हुए हैं, इसलिये भी **वरद** कहलाते है ।

391. इच्छा पुर्ण करने वाले आप **परम** हो ।

392. आप स्वयं की आत्मा को तथा भक्तों को पवित्र करनेवाले होने से **पुमान्** हो ।

कवि: पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभ: पुरु: ।

प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामह: ॥११॥

अन्वयार्थ :

393. अनेक दृष्टांतों से, उपमाओं से धर्माधर्म का निरुपण किया करते हैं, इसलिये आप **कवि** हो ।

394. आप अनादिकालीन हो तथा सर्व पुराणों मे आपकी चर्चा पायी जाती हैं, इसलिए **पुराणपुरुष** हो ।

395. आप इतने वृद्ध हो, कि आपका जन्म किसी ने देखा नही है, इसलिये **वर्षीयान्** हो ।

396. अनंतवीर्य होने से **वृषभ** हो ।

397. आप सबसे अग्रगामी हैं, महाजनों में श्रेष्ठ हैं, इसलिये **पुरु** हैं ।

398. आपके भक्ति, सेवा करनेवालों को अनायास ही प्रतिष्ठा प्राप्ति हो जाती है, अथवा स्थैर्य आपसे उत्पन्न हुआ है इसलिये **प्रतिष्ठाप्रसव** हो ।

399. मोक्ष के कारण आप **हेतु** हो ।

400. तीनों लोकों में मात्र एक आप ही ऐसे हो जो सबका कल्याण करनेवाला, मोक्षमार्ग बतानेवाला हितोपदेश देते हैं, इसलिये हे विभो आपको **भुवनैकपितामह** भी कहा जाता है ।

इति महाऽशोकाऽदिध्वजम् !!

पंचम-अध्याय

श्रीवृक्षलक्षण श्लक्ष्णो लक्षण्य: शुभलक्षण: ।

निरक्ष: पुण्डरीकाक्ष: पुष्कल: पुष्करेक्षण: ॥१॥

अन्वयार्थ :

401. आपके अष्ट-प्राअतिहार्यों में से एक अशोक अर्थात श्रीवृक्ष है, इसलिये आप को **श्रीवृक्षलक्षण** कहते है ।
402. आपका शरीर अत्यंत मृदू होने से, लक्ष्मी के द्वारा आलिंगित होने से अथवा सुक्ष्म होने से **श्लक्षण** हो ।
403. लक्षण-सहित होने से **लक्षण्य** हो ।
404. १००८ शुभ-लक्षण होने से **शुभलक्षण** हो ।
405. इंद्रीय-रहीत होने से **निरक्ष** हो ।
406. कमल-नयन होने से **पुण्डरीकाक्ष** हो ।
407. सम्पूर्ण होने से **पुष्कल** हो ।
408. कमलदल के समान दीर्घ नेत्र होने से **पुष्करेक्षण** हो ।

सिद्धिद: सिद्धसंकल्प: सिद्धात्मा सिद्धसाधन: ।

बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिक: ॥२॥

अन्वयार्थ :

409. मोक्षरुप सिद्धिदायक होने से **सिद्धिद** हो ।
410. जो भी जनों के संकल्प / इच्छा है, उन्हें सफल करनेवाले होने से **सिद्धसंकल्प** हो ।
411. पूर्ण स्वानंद रुप् आत्मलीन होने से **सिद्धात्मा** हो ।
412. मोक्षमार्ग रुप साधन होने से **सिद्धसाधन** हो ।
413. बुद्धिमान अथवा विशेष ज्ञानीयों द्वारा जानने-योग्य होने से **बुध्यबोध्य** हो ।
414. केवलज्ञानी होने से **महाबोधी** हो ।
415. आपके सर्वत्र पुज्य होने से तथा आपकी पुजनीयता सतत वृद्धीमान होने से **वर्द्धमान** हो ।

416. आपकी विभूती विशेष होने से, ऋद्धियाँ अपने आप आपको अवगत होने से **महर्द्धिक** कहे जाते हो ।

वेदांगो वेदविद् वेद्यो जातरूपो विदांवर: ।

वेदवेद्य: स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवर: ॥३॥

अन्वयार्थ :

417. चार अनुयोगरुपी वेद के कारण आप **वेदांग** हैं ।
418. आप आत्मा का यथार्थ स्वरुप् जानते हैं, इसलिये **वेदविद्** हैं ।
419. आप आगम अर्थात अनुयोगों द्वारा जानने के योग्य होने से **वेद्य** हैं ।
420. जन्म लेते समय जो दिगंबर अवस्था तथा विकार-रहित अवस्था होती हैं, वैसे होने से **जातरुप** हैं ।
421. आप सब विद्वानों में श्रेष्ठ हैं अर्थात **विदांवर** हैं ।
422. केवलज्ञान के द्वारा भी आपको जाना जा सकता है, अर्थात आप **वेदवेद्य** हो ।
423. आत्मानुभव से ही आपको जाना जा सकता है, इसलिये **स्वसंवेद्य** हो ।
424. जो अनागम है उसे भी आप जानते हो इसलिए **विवेद** हो ।
425. वक्ताओं में, उपदेशकर्ताओं में आप सर्व-श्रेष्ठ हैं इसलिये आप **वदतांवर** हैं ।

अनादि निधनोऽ व्यक्तो व्यक्तवाग व्यक्तशासन: ।

युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिज: ॥४॥

अन्वयार्थ :

426. आपके जन्म तथा अन्त-रहित होने से **अनादिनिधन** हो ।
427. आपका वर्णन किसी के लिये संभव नही इसलिये **अव्यक्त** हो ।
428. आपका उपदेश सब प्राणियों को समझने वाला है इसलिये **व्यक्तवाक्** हो ।
429. आपने कथित किया हुआ शासन ही एक मात्र सम्यक शासन होने से अथवा आपके व्यक्तव्य का कोई विरोध नही, सब संसार में वह प्रसिद्ध है इसलिये भी **व्यक्तशासन** हो ।
430. कर्म-युग के आरंभकर्ता होने से **युगादिकृत** हो ।

431. युग के पालक, अथवा त्राता होने से **युगाधार** हो ।

432. आप युग के प्रारंभ से हैं, अर्थात **युगादि** हैं ।

433. आप कर्म-भूमि के आरंभ में उत्पन्न हुए इसलिये आपको **जगदादिज** भी कहा जाता है ।

अतीन्द्रोऽतिन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतिन्द्रियार्थ दृक् ।

अनिन्द्रियो अहमिन्द्राच्र्यो महेन्द्र महितो महान् ॥५॥

अन्वयार्थ :

434. आप इन्द्र-नरेन्द्रों के भी विशेष होने से **अतीन्द्र** हो ।

435. आपका यथार्थ स्वरुप अर्थात विशुद्धात्मा इन्द्रियों को गोचर ना होने से **अतिन्द्रिय** हो ।

436. बुद्धि के नाथ होने से अथवा आप शुक्ल-ध्यान के द्वारा परमात्म-स्वरुप प्राप्त करनेवाले होने से **धीन्द्र** हो ।

437. इन्द्रों में महान होने से अथवा पूजा के अधिपति होने से **महेन्द्र** हो ।

438. जो पदार्थ इन्द्रिय और मन के अगोचर हैं, उन्हे भी आप जानते हो इसलिये **अतिन्द्रियार्थदृक्** हो ।

439. इन्द्रिय-रहित होने से **अनिन्द्रिय** हो ।

440. अहमिन्द्रों द्वारा पूजनीय, पूजित और पूज्य होने से **अहमिन्द्राच्र्य** हो ।

441. इन्द्र भी आपकी महिमा गाते हैं, आप उनके भी पुज्य हैं, इसलिये **महेन्द्रमहित** हो ।

442. समस्त जीवों के बडे और पूज्य होने से आप **महान्** कहे जाते हैं ।

उद्भव: कारणं कर्ता पारगो भक्तारक: ।

अगाह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्य: परमेश्वर: ॥६॥

अन्वयार्थ :

446. यह आपका अंतिम भव होने से आप **उद्भव** हैं ।

447. मोक्ष के, मोक्ष-मार्ग के आप **कारण** हैं ।

448. शुद्ध भाव आप से ही उपजते हैं इसलिये **कर्ता** हैं ।

449. संसार-समुद्र के पारगामी होने से **पारग** हो ।

450. समस्त जीवों को पार लगानेवाले होने से **भवतारक** हो।

451. इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नही किये जा सकते इसलिये **अग्राह्य** हो।

452. आपका स्वरुप अत्यंत गूढ होने से आप **गहन** हैं।

453. आप रहस्यमय होने से अर्थात गुप्तरुप होने से अर्थात आपका यथार्थ स्वरुप जो आत्मा है, वह अगोचर होने से **गुह्य** हो।

454. औरों के द्वारा अर्घ्य देने के योग्य होने से अथवा उत्कृष्ट विभूति के धारक होने से **परार्घ्य** हो।

455. सबके स्वामी होने से अथवा परमपद मोक्ष के स्वामी होने से आप **परमेश्वर** भी कहे जाते हैं।

अनन्तर्द्धि मेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धि समग्रधी: ।

प्राग्रय: प्राग्रहरोऽभ्यग्र: प्रत्यग्रयोऽग्रिमोग्रज ॥७॥

अन्वयार्थ :

453. आप अनंत ऋद्धियों के धारी होने से **अनंतर्द्धि** हैं।

454. अनगिनत अमित ऐश्वर्य को धारण करने से **अमेयर्द्धि** हो।

455. चिंतन से परे आपका ऐश्वर्य, ऋद्धी, बल, ज्ञान होने से **अचिन्त्यर्द्धि** हो।

456. जगत के समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों का सम्पूर्ण ज्ञान होने से **समग्रधी** हो।

457. सब के मुख्य होने से **प्राग्रय:** हो।

458. सब में श्रेष्ठ होने से **प्राग्रहर** हो।

459. श्रेष्ठमे श्रेष्ठ होने से **अभ्यग्र** हो।

460. लोक के अग्र में ही आपकी रुचि होने से **प्रत्यग्र** हो।

461. सबके नेता, मोक्षमार्ग की दिशा में ले जाने वाले अग्रणी होने से **अग्र्य** हो।

462. सबके आगे होने से **अग्रिम** हो।

463. सबके ज्येष्ठ होने से **अग्रज** कहे जाते हैं।

महातपा महातेजा महोदर्को महोदय: ।

महायशा महाधामा महासत्वो महाधृति: ॥८॥

अन्वयार्थ :

464. कठिन तप करनेवाले आप **महातपा** हैं ।
465. अत्यंत तेजस्वी होने से **महातेजा** हैं ।
466. आपने तप से केवलज्ञान की प्राप्ति की है, इसलिए **महोदर्क** हैं ।
467. समस्त जन को सुदैवी होनेका आनंद होनेका भाव आपसे होता है इसलिये **महोदय** हैं ।
468. आपका मोक्ष प्राप्त करने का यश महान है इसलिये **महायशा** हैं ।
469. आप प्रकाशरुप हैं, आपका ज्ञान प्रकाशरुप है इसलिये **महाधामा** हैं ।
470. आप महान विभुति है अथवा आपका होना ही महान है इसलिये **महासत्व** हैं ।
471. आप वीर हैं, महान धैर्यधर हैं, इसलिये आपको **महाधृति** भी कहा जाता है ।

महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन् महाबल: ।

महाशक्ति र्महाज्योति र्महाभूति र्महाद्युति: ॥९॥

अन्वयार्थ :

472. व्यग्र अथवा चिंतित ना होनेवाले होने से **महाधैर्य** हो ।
473. अतिशय सामर्थ्यवान होने से **महावीर्य** हो ।
474. महान संपदा के धनी होने से (समवशरण) **महासंपत्** हो ।
475. अतिशय बलवान होने से **महाबल** हो ।
476. अनंत बलशाली होने से **महाशक्ति** हो ।
477. असामान्य अद्वितीय कांतिमान होने से अथवा केवलज्ञान रुपी महान प्रकाशमान होने से **महाज्योति** हो ।
478. पंचकल्याणक जैसी विभुति के कांत होने से **महाभूति** हो ।
479. अतिशय दिव्य शोभायमान होने से **महाद्युति** भी कहलाते हैं ।

महामति-र्महानिति-र्महाक्षान्ति-र्महोदय: ।

महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकवि: ॥१०॥

अन्वयार्थ :

480. अतिशय बुद्धिमान होने से **महामति** हो ।

481. न्याय में पारंगत होने से अथवा न्यायवान होने से **महानिति** हो ।

482. अतिशय क्षमावान होने से **महाक्षान्ति** हो ।

483. अत्यंत दयालु अथवा दयावान होने से **महादय** हो ।

484. अत्यंत प्रवीण होने से **महाप्राज्ञ** हो ।

485. आप स्वयं भी महाभाग्यशाली हो, तथा सब के लिये भी अत्यंत भाग्यकारी हो इसलिये **महाभाग** हो ।

486. स्वयं आत्मानंद में लीन होने से तथा सबके लिये आनंदकारी होने से **महानन्द** हो ।

487. शास्त्रों के रचयिता होने से आप **महाकवि** इत्यादि नामों से प्रसिद्ध हैं ।

महामहा महाकिर्ति र्महाकान्ति र्महावपु: ।

महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुण: ॥११॥

अन्वयार्थ :

488. महान लोगों में महान होने से **महामहा** हो ।

489. आपकी कीर्ती सर्व जगत में / त्रिलोक मे व्याप्त होने से **महाकीर्ती** हो ।

490. अत्यंत तेजोमय कांतिमान होने से **महाकांती** हो ।

491. महान काय होने से **महावपु** हो ।

492. आपने मोक्षमार्ग के उपदेश का, जगत में कैसे जीवन जीने का यह ज्ञान समस्त जीवों को दिया है, इसलिये आप **महादान** हो ।

493. एक मात्र ज्ञान जिसके रहते ना कोई ज्ञान रहता है, ना कोई और ज्ञान की आवश्यकता होती है, ऐसा केवलज्ञान धारण करने से **महाज्ञान** हो ।

494. नियोग करने से **महायोग** हो ।

495. लोक के कल्याणकारी गुणधारक होने से आप को **महागुण** भी कहा जाता है ।

महा महपति: प्राप्त महाकल्याण पञ्चक: ।

महाप्रभू र्महा प्रातिहार्योर्धीशो महेश्वर ॥१२॥

अन्वयार्थ :

496. पंच-कल्याणरुपी महापूजाओं को प्राप्त कर आपने यह सिद्ध किया की आप **महामहपति** हो ।

497. गर्भ से मोक्ष तक के पांच कल्याणक होने से आप **प्राप्तमहाकल्याणपंचक** हो ।

498. आप सब में महान हो, सबके स्वामि हो, सब में श्रेष्ठ हो, सबके कल्याणकारी हो इसलिये आप **महाप्रभु** हो ।

499. अशोक वृक्ष, सिंहासन, भामंडल, छत्र, चंवर, पुष्पवृष्टी, देवदुदुंभि, दिव्यध्वनी यह आठ प्रातिहार्य आपके समीप सदैव रहने से, आप उनके स्वामी रहने से **महाप्रातिहार्याधीश** हो ।

500. इंद्र तथा गणधर व जिनके अधीश्वर होने से आपको **महेश्वर** भी कहा जाता है ।

इति श्रीवृक्षादिशतम् ।

षष्ठम-अध्याय

महामुनि र्महामौनी महाध्यानी महादमः ।

महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥

अन्वयार्थ :

501. मुनियों में महान होने से **महामुनि** हैं ।

502. ओष्ठ द्वारा आप कुछ भी नही कहते इसलिये **महामौनी** हैं ।

503. परम शुक्ल-ध्यान करने से **महाध्यानी** हो ।

504. महान शत्रु अर्थात विषय कषाय को दमन करने से अथवा महान शक्ती व वीर्य के धारक होने से **महादम** हो ।

505. आप क्षमाशील हैं, महान क्षमांकर हैं इसलिये **महाक्षम** हो ।

506. आपका ब्रह्म सम्पूर्ण है, अत्युच्च है, इसलिये **महाशील** हैं ।

507. आपने स्वभाव की अग्नि में विभाव परिणामों की आहुति देकर अथवा तप के द्वारा इंद्रिय विषय-कषाय की आहुति देकर उत्तम यज्ञ का उदाहरण प्रस्तुत किया है इसलिये **महायज्ञ** हो ।

508. अतिशय पूज्य होने से अथवा सकल पूज्यो में महान होने से आप को **महामख** भी कहा जाता है ।

महाव्रत पतिर्मह्यो महाकान्ति धरोऽधिप: ।

महामैत्री महामेयो महोपायो महोमय: ॥२॥

अन्वयार्थ :

509. पञ्चमहाव्रत के स्वामी अथवा पालक अथवा प्रणेता होने से **महाव्रतपति** हो ।

510. जगत्पुज्य होने से **मह्य** हो ।

511. अत्यंत तेज धारण करने से अथवा केवलज्ञान रुपी प्रकाश-ज्योत के धारक होने से **महाकांतिधर** हैं ।

512. सबके पालक, रक्षक, स्वामी, अधिपति होने से **अधिप** हो ।

513. आपकी सकल जीवों से मैत्री है, इसलिये **महामैत्रीमय** हो ।

514. आपकी सीमा कोई नहीं नाप सकता इसलिये **अमेय** हो ।

515. मोक्ष के लिये उत्तम मार्ग बताने से **महोपाय** हो ।

516. मंगलमय, तेजोमय, ज्ञानमय होने से **महोमय** भी कहलाते हैं ।

महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायति: ।

महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपति: ॥३॥

अन्वयार्थ :

517. आप करुणाकर हैं, करुणानिधान हैं, सब जीवों के प्रति दया धारण करते हैं, इसलिये आप **महाकारुणिक** हैं ।

518. सबके मन में चल रहे विचारों को आप जानते हो, इसलिये आप **मन्ता** हो ।

519. अनेक मन्त्रों के आप स्वामी हो, आप का नाम मात्र ही सबके लिये सर्वश्रेष्ठ मन्त्र हैं, इसलिये **महामन्त्र** हो ।

520. आप सब में श्रेष्ठ इन्द्रिय निग्रही हो, आप सब में श्रेष्ठ साधु हो, इसलिये **महायति** हो ।

521. आप दिव्य-ध्वनी ओष्ठव्य ना होकर नादमयी है, कल्याणकारी है, इसलिये **महानाद** हो ।

522. धर्म का घोष करनेवाली महान वाणी से **महाघोष** हो ।

523. पूज्यों के पुज्य होने से अथवा महान यज्ञकर्ता होने से **महेज्य्** हो ।

524. महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती, बहिरंग तथा अंतरंग सम्पत्ती के स्वामी होने से **महासाम्पत्ति** कहे जाते हैं ।

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।

महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदय: ॥४॥

अन्वयार्थ :

525. अहिंसादि महाव्रतों के धारक आप **महाध्वरधर** हो ।
526. आप वीर हो, शूर हो, धुरंधर हो **धुर्य** हो ।
527. आपने उदार होकर स्वयं ही मोक्ष का मार्ग सबको जतलाया हैं, इसलिये **महौदार्य** हो ।
528. आपकी वाणी महान है, इष्ट है, कल्याणकारी है इसलिये **महेष्टवाक** हो ।
529. सर्व जगत में आपकी आत्मा पूज्य है, परम-शुक्ल है, परम-विशुद्ध है इसलिये **महात्मा** हो ।
530. आप ही समस्त लोक के प्रकाशक हो, आपके पास केवलज्ञान की तेज ज्योती है, आपका तेज अपार है इसलिये **महसांधाम** हो ।
531. चौसठ ऋद्धीयाँ आपको तप के बल से अनायास ही प्राप्त हुई है इसलिये **महर्षि** हो ।
532. सबके पुज्य होने से, उदय से ही पूज्य होने से **महितोदय्** कहलाते हैं ।

महाक्लेशांकुश: शूरो महाभूतपतिर्गुरु: ।

महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधारिपुवशी ॥५॥

अन्वयार्थ :

533. विषय-कषायादि महान क्लेषों पर आपने अंकुश रखा है, अथवा तप रुपी महा-क्लेश करने से **महाक्लेशांकुश** हो ।
534. कर्मारि आदि महान शत्रूओं पर विजय पाने से **शूर** हो ।
535. गणधर आदि विद्वान लोगों के स्वामी होने से अथवा इन्द्रादि चक्रवर्ती जैसे महान व्यक्तियों से पुजीत होने से **महाभूतपति** हो ।
536. सबको क्षेमंकर उपदेश देकर सही मार्ग का प्रतिपादन करने से **गुरु** हो ।

537. आपका कर्मों को जीतने से अथवा ज्ञान-शक्ति अद्भुत् होने से आपने **महापराक्रम** सिद्ध किया है ।

538. आप अन्त-रहित हैं, आप का नाम सदैव रहेगा तथा आप सिद्धशिला पर अनंतानंत काल विराजमान रहेंगे इसलिये आप **अनंत** हैं ।

539. क्रोध के सबसे बडे शत्रु आप होने से अर्थात आप **महाक्रोधारिपु** हैं ।

540. आप इन्द्रियों को वश करने वाले **वशी** हैं ।

महाभवाब्दि संतारी र्महामोहाऽद्रि सूदनः ।

महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥

अन्वयार्थ :

541. संसार-सागर को पार करानेवाले होने से **महाभवाब्दिसंतारी** हो ।

542. मोहरूपी महाशत्रु का भेदन करने से अथवा महा-मोहांधकार का नाश करने से **महामोहाद्रिसूदन** हो ।

543. आपके गुण अनंत हैं, आप अनेक महान गुणों के धारक हैं, इसलिये **महागुणाकर** हो ।

544. कषाय-रहित होने से, क्षमावान होने से **क्षान्त** हो ।

545. योग में पारंगत होने से अथवा नियोग धारण कर मोक्ष प्राप्त करनेवाले होने से अथवा गणधरों जैसे महायोगीयों के स्वामी होने से **महायोगीश्वर** हो ।

546. समस्त कर्मों का क्षय कर आपने महान शांतता पायी है, सुख पाया है, इसलिये आप **शमी** हैं ।

महाध्यानपति र्ध्यात महाधर्मा महाव्रतः ।

महाकर्मारि हाऽऽत्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥

अन्वयार्थ :

547. परम शुक्ल-ध्यान के धारक आप **महाध्यानपति** हो ।

548. आपने महान धर्म अहिंसा का ही ध्यान कर उसे यथार्थ समझकर समस्त जीवों को समझाया है आप **ध्यातमहाधर्म** हो ।

549. पंच महाव्रतों को भी आपने सहजता से धारण किया हैं, इसलिये **महाव्रत** हो ।

550. महान शत्रु, कर्म को ध्वस्त करने से आप **महाकर्मारिहा** हो ।

551. आप स्वयं आत्म-स्वरुप हैं अथवा आत्मा का यथार्थ स्वरुप का ज्ञान रखते है , इसलिये **आत्मज्ञ** हो ।

552. समस्त देवों के भी आप पूज्य हैं, उनके लिये भी आप महान हैं, इसलिये **महादेव** हो ।

553. विलक्षण ऐश्वर्य के स्वामी होने से **महेशिता** भी कहे जाते हैं ।

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः ।

असंख्येयोऽ प्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥

अन्वयार्थ :

554. शारीरिक और मानसिक क्लेष दूर करने वाले आप **सर्वक्लेषापह** हैं ।

555. आपने रत्नत्रय सिद्ध किया इसलिये **साधु** हो ।

556. समस्त जनों के सर्व दोष आपके नाम मात्र से दूर होते है अथवा आप दोष हरने वाले होने से **सर्वदोषहर** हैं ।

557. अनेक जन्मों के पाप को हराने वाले आप **हर** हैं, अथवा आपके उपदेश पर चलनेवालों के अनेक् जन्मों के पाप भी नष्ट होते हैं, इसलिये **हर** हैं ।

558. आप असंख्यात गुणों के धारक हैं, आप के गुणों की संख्या करने का सामर्थ्य किसी में नही हैं, इसलिये **असंख्येय** हो ।

559. आप किसी से भी यथार्थ रुप में जाने नही जा सकते, अथवा कोई भी आपको सम्पूर्ण जानने का सामर्थ्य नही रखता इसलिये आप **अप्रमेयात्मा** हैं ।

560. आप दोषों का, दुःखों का शमन करनेवाले होने से **शमात्मा** हो ।

561. आप स्वयं भी शांत-मूर्ती होने से **प्रशमात्मा** कहलाते हो ।

सर्वयोगी श्वरोऽ चिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।

दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥

अन्वयार्थ :

562. समस्त योगीयों के पूज्य हैं, स्वामी हैं, ईश्वर हैं, आप **सर्वयोगीश्वर** हैं ।

563. चिंतवन की सीमा से परे हैं, इसलिये **अचिन्त्य** हैं ।

564. आप की आत्मा सर्व शास्त्रों का रहस्यरुप है, अथवा आप भाव-श्रुतज्ञान-रूप हैं, इसलिये **श्रुतात्मा** हैं ।

565. समस्त विश्व का समस्त ज्ञान आप में समाविष्ट होने से अथवा तीनों लोकों के समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों के जाननेवाले आप **विष्टरश्रवा** हो ।

566. सबको आत्मा के स्वरुप को पाने कि शिक्षा देने से **दान्तात्मा** हो ।

567. इंद्रिय दमन के तीर्थ के स्वामी होने से अथवा योग के दम के प्रवीण होने से **दमतीर्थेश** हो ।

568. योग स्वरुप होने से अथवा आत्मा से ही आपका योग होने से **योगात्मा** हो ।

569. केवलज्ञान के द्वारा सर्वत्र व्याप्त होने से **ज्ञानसर्वग** भी कहे जाते हैं ।

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ।

प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत् क्षेमशासनः ॥१०॥

अन्वयार्थ :

570. एकाग्रता आत्मा का ध्यान चिंतन करने से **प्रधान** हो ।

571. आपका अब केवलज्ञान के अलावा कोई स्वरूप नहीं, अर्थात् आप ही **आत्मा** हो, आत्मरुप हो ।

572. आप कृति-प्रशंसनीय हैं अथवा आप ही **प्रकृति** हो ।

573. श्रेष्ठ होने से, ज्येष्ठ होने से, पूज्य होने से, महान यती तथा इन्द्रों द्वारा भी पूजित होने से आप **परम** हो, परमात्मा हो ।

574. आपके उदित होने मात्र से कल्याण होता है इसलिए **परमोदय** हो ।

575. आपके कर्म-बंध क्षीण होते-होते गल गये है इसलिये आप **प्रक्षीणबन्ध** हो ।

576. आपने कामदेव का विनाश किया है, इसलिए आप **कामारि** हो ।

577. आप सबका कल्याण करनेवाले **क्षेमकृत्** हो ।

578. आपने चलाया हुआ शासन भी कल्याणकारी होने से **क्षेमशासन** हो ।

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः ।

प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥

अन्वयार्थ :

579. ध्वनी-स्वरुप होने से, ॐकाररूप होने से **प्रणव** हो ।

580. सबके नेता होने से अथवा मित्र होने से अथवा प्रिय होने से **प्रणय** हो ।

581. आप सबके लिये जीवनदायी हो, इसलिये **प्राण** कहे जाते हो ।

582. दयालु होकर प्राणदान करने से अथवा प्राण का ज्ञान देनेसे **प्राणद** हो ।

583. जो भी आपको प्रणाम करते हैं, जैसे इन्द्रादिक तथा समस्त जीव , उनका पालन करनेवाले होने से **प्रणतेश्वर** हो ।

584. आप लोकों में, देह से, ज्ञान से तथा सम्यकदर्शन से **प्रमाण** हैं ।

585. सबके मर्मज्ञ होने से अथवा योगीयों द्वारा गुप्त (आत्मा में) चिंतन के योग्य होने से **प्रणिधि** हो ।

586. आप मोक्ष के कारण के लिये **दक्ष** हैं ।

587. सरल स्वभाव होने से **दक्षिण** हो ।

588. जैसे यज्ञ के पुरोहित तज्ञ होते हैं, वैसे ही कर्मों के यज्ञ में आप श्रेष्ठ हो इस लिये **अध्वर्यु** हो ।

589. सरल, सन्मार्ग की प्रवृत्ति करनेवाले होने से **अध्वर** भी कहलाते हैं ।

आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽ निन्द्योऽ भिनन्दनः ।

कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः ॥१२॥

अन्वयार्थ :

590. सदैव संतुष्ट हैं, आत्म-सुख मे लीन है इसलिये आपको **आनंद** कहा जाता है ।

591. सबको आनंददायक सुखकारक होने से **नंदन** हो ।

592. आप स्वयं भी सुख-स्वभावी हैं, **नंद** हैं ।

593. आप स्तुत्य हैं, पूज्य हैं, **वंद्य** हैं ।

594. आप अठारह दोषों से रहित हैं, कोई भी ऐसा कारण नही जिससे आपकी निन्दा हो सके अर्थात निन्दा के अयोग्य होने से **अनिंद्य** हो ।

595. आपके निकट में भय का कोई भी कारण नही होता है, तथा आप जहाँ भी विहार करते हैं, वहा आनंद मात्र ही चहुँ-ओर होता है, इसलिए आपको **अभिनंदन** भी कहा जाता है ।

596. कामदेव को हरानेसे **कामह** हो ।

597. कामना पूर्ती करनेवाले होने से **कामद** हो ।

598. आपकी आपके स्वरुप की प्राप्ति की चाह भक्तों को भव्य-जीवों को सदैव रहती है, इसलिये आप **काम्य** हो ।

599. इच्छित-फल को देनेवाले आप को **कामधेनू** कहते हैं ।

600. समस्त शत्रुओं पर विजयी होने से आपको **अरिंजय** भी कहा जाता है ।

इति महामुन्यादिशतम् ।

सप्तम-अध्याय

असंस्कृत सुसंस्कार: अप्राकृतो वैकृतान्तकृत् ।

अन्तकृत् कान्तगु: कान्तश्चिन्तामणिर भीष्टद: ॥१॥

अन्वयार्थ :

601. आप स्वभाव से ही अर्थात बिना किसी संस्कारों से ही सुसंस्कारी हैं, इसलिये आप **असंस्कृतसुसंस्कार** हैं ।

602. आपके स्वरुप का किसी भी प्रकृति से उत्पन्न अथवा कृत ना होने से आप **अप्राकृत** हो ।

603. सब विकृतियों का नाश करनेवाले आप **वैकृतान्तकृत्** हो ।

604. संसार के अंत को अर्थात मोक्ष को सुगम करने से **अन्तकृत** हो ।

605. आपकी वाणी सुन्दर है, आपकी प्रभा अथवा आभा सुन्दर है, इसलिये **कान्तगु** हो ।

606. शोभायुक्त (समवशरण की अगणित शोभा) होने से **कान्त** हो ।

607. इच्छित फल देने वाले हो, जैसे चिंतामणि रत्न मन् की इच्छा जानकर् उसे पूर्ण करता है, इसलिये **चिन्तामणि** हो ।

608. शुभ फल देनेवाले अथवा भव्य जीवों के लिये इष्ट फल देनेवाले होने से **अभिष्टद** भी कहे जाते हैं ।

अजितो जितकामारि रमितोऽ मितशासनः ।

जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥२॥

अन्वयार्थ :

609. कामक्रोधादि शत्रु आपको जीत नहीं पाये, इसलिये आप **अजित** हो ।

610. आपने कामक्रोधादि शत्रुओं पर विजयी होकर उन्हे ध्वस्त-परास्त कर दिया है, इसलिये **जितकामारि** हो ।

611. आपके ज्ञान कि, शक्ति की, सुख की कोई मर्यादा नहीं है, इसलिये **अमित** हो ।

612. आपके बताये हुआ मार्ग, अर्थात शासन का भी कोई अंत नहीं, अर्थात आपका बताया हुआ मार्ग ही सदैव एकमेव सम्यक मोक्षमार्ग होगा इसलिये **अमितशासन** हो ।

613. क्रोध को जीतने से अर्थात आप परम-क्षमारुप होने से **जितक्रोध** हो ।

614. अमित्र (कर्म शत्रु) पर विजयी होने से **जितामित्र** हो ।

615. समस्त क्लेशों पर मात करने से **जितक्लेश** हो ।

616. अंत को अर्थात यम को जीतने से, मोक्ष को प्राप्त करने से **जितान्तक** भी कहे जाते हैं ।

जिनेन्द्र परमानंदो मुनिन्द्रो दुन्दुभिस्वनः ।

महेन्द्र वन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥

अन्वयार्थ :

617. गणधर आदि जिनके आप आद्य, वंद्य, पूज्य इन्द्र होने से **जिनेन्द्र** हो ।

618. उत्कृष्ट आनंद स्वरुप होने से अथवा आप का रुप आनंदकारी होने से अथवा आप सदैव आत्मा के आनंद में लीन रहनेवाले होने से **परमानंद** हो ।

619. मुनियों के इन्द्र, ज्येष्ठ, नेता होने से **मुनींद्र** हो ।

620. आपकी ध्वनी दुन्दुभियों के समान शुभ, कर्णप्रिय, आनंदकारी, सुखदायक और शुभसूचक है, इसलिए **दुन्दुभिस्वन** हो ।

621. शत इन्द्र, महेन्द्र के भी आप पूज्य हैं, इसलिये **महेन्द्रवन्द्य** हो ।

622. योगी, तप करनेवाले, मुनि आदियों के इन्द्र होने से **योगीन्द्र** हो ।

623. ऋषीयों के, यतीयों के भी आप इन्द्र हैं, इसलिए आपको **यतीन्द्र** भी कहा जाता है ।

624. नाभिराय के पुत्र होने से या आप स्वयं किसी का भी अभिनंदन करनेवाले नहीं होने से **नाभिनंदन** हैं ।

नाभेयो नाभिजोऽजात: सुव्रतो मनुरुत्तम: ।

अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वान धिकोऽधिगुरु: सुगी: ॥४॥

अन्वयार्थ :

625. नाभि के पुत्र **नाभेय** हो ।
626. नाभि कुल मे जन्म लेने से **नाभिज** हो ।
627. अब फिर से उत्पन्न नहीं होंगे इसलिये **अजात** हो ।
628. अहिंसादि अनेक उत्तम-व्रतों के धारक **सुव्रत** हो ।
629. कर्मभूमि की रचना करने से **मनु** हो ।
630. श्रेष्ठ होने से **उत्तम** हो ।
631. आपको कर्म शत्रु तो क्या कोई भी भेद नहीं सकता इसलिये **अभेद्य** हो ।
632. आपका विनाश कभी नहीं होगा, इसलिये **अनत्यय** हो ।
633. अनशनादि तप करने से **अनश्वान** हो ।
634. सबसे आप अधिक हैं अथवा आप धिक्कार-योग्य नहीं हैं, इसलिये **अधिक** हो ।
635. सबसे उत्तम अर्थात मोक्षमार्ग का उपदेश देने से अथवा गुरुओं मे प्रथम होने से **अधिगुरु** हो ।
636. आपकी वाणी अथवा दिव्य-ध्वनी कल्याणकारी होने से आप **सुगी** कहलाते हैं ।

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुक: ।

विशिष्ट शिष्टभुक शिष्ट: प्रत्यय: कामनोऽनघ: ॥५॥

अन्वयार्थ :

637. आपकी बुद्धी सर्व श्रेष्ठ होने से अथवा आप का ज्ञान श्रेष्ठ (केवलज्ञान) होने से **सुमेधा** हो ।
638. पहाडो जैसे कर्मारि को पराक्रम से नाश करने से अथवा जन्म-मृत्यु के क्रम से मुक्त होने से **विक्रमी** हो ।

639. आप तीनों जगत के अधिपति होने से या मुक्ति-लक्ष्मी को प्राप्त करने से **स्वामी** हो ।
640. कोई भी आपको निवार नहीं सकता आप **दुराधर्ष** हो ।
641. आपने सब जान लिया है, इसलिए अब आप **निरुत्सुक** हो ।
642. शिष्टों में श्रेष्ठ होने से **विशिष्ट** हो ।
643. शिष्टों का पालन करने से **शिष्टभुक्** हो ।
644. स्वयं भी राग-द्वेष-मोहादि दोषों से दुर रहने से **शिष्ट:** हो ।
645. ज्ञान-स्वरुप होने से अथवा विश्वासरुप होने से अथवा स्वयं प्रमाण होने से **प्रत्यय** हो ।
646. सबके इच्छेय होने से अथवा कामना के योग्य होने से अथवा काम का नाश करनेवाले होने से **कामन** हो ।
647. पाप-रहित होने से **अनघ** नाम से प्रसिद्ध हैं ।

क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्य: क्षेमधर्मपति: क्षमी ।

अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तर ॥६॥

अन्वयार्थ :

648. आप सफल हो, अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर आपने महान सफलता पायी है, इसलिये **क्षेमी** हो ।
649. सबका कल्याण करने वाले होने से **क्षेमंकर** हो ।
650. आप कभी भी क्षय नहीं होने से **अक्षय्य** हो ।
651. मोक्षमार्ग बतानेवाला, अथवा कल्याण करनेवाले धर्म के (जैन धर्म के) प्रवर्तक होने से **क्षेमधर्मपति** हो ।
652. क्षमावान होने से **क्षमी** हो ।
653. इन्द्रियों के द्वारा आपका यथार्थ रुप ग्रहण नहीं किया जा सकता इसलिये **अग्राह्य** हो ।
654. अपितु निश्चय रत्नत्रय में अभेद से आपको समझा जा सकता हैं, इसलिये **ज्ञाननिग्राह्य** हो ।
655. ध्यान के द्वारा शुद्धोपयोग में भी आपको जाना जा सकता हैं, इसलिये **ध्यानगम्य** हो ।
656. आपसे बेहतर कोई नहीं, अर्थात उत्कृष्टता की सीढी में आप से उपर (उत्तर अथवा उर्ध्व दिशा में) कोई नहीं हैं, इसलिये आप को **निरुत्तर** नाम से भी जाना जाता है ।

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनय श्चतुराननः ।

श्रीनिवास श्चतुर्वक्त्र श्चतुरास्य श्चतुर्मुखः ॥७॥

अन्वयार्थ :

657. पुण्य के धारक होने से **सुकृती** हो अर्थात आपने अनंत पुण्य करने से आप का यह रुप प्रकट हुआ है ।

658. शब्दों के धनी, खान या भंडार होने से **धातु** हो ।

659. पूज्य अथवा पूजा के योग्य होने से **इज्यार्ह** हो ।

660. नय को आपसे अच्छा कौन जानता है? इसलिये **सुनय** हो ।

661. समवशरण में विद्यमान आपके चार दिशाओं में चार मुख दिखने से **चतुरानन** हो ।

662. बहिरंग और अंतरंग लक्ष्मी का निवास-स्थान होने से **श्रीनिवास** हो ।

663. एक मुख होकर भी चार दिखने से **चतुर्वक्त्र** हो ।

664. **चतुरास्य** हो ।

665. **चतुर्मुख** के नाम से भी जाने जाते हैं ।

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः ।

सत्याशी सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥

अन्वयार्थ :

666. आप ही सत्य-स्वरुप अर्थात आत्म-स्वरुप हैं, इसलिये **सत्यात्मा** हो ।

667. आपका ज्ञान सम्पूर्ण सत्याधिष्ठीत है, इसलिये **सत्यविज्ञान** हो ।

668. आपकी वाणी पदार्थों का यथार्थ स्वरुप प्रकट करती है, आपके वचन सदैव सत्य-स्वरुप होने से **सत्यवाक्** हो ।

669. आपने बताया हुआ मार्ग अर्थात शासन यथार्थ है, मोक्ष प्राप्त करानेवाला है इसलिये **सत्यशासन** हो ।

670. सत्य को आपने यथार्थ में प्राप्त किया है, इसलिये **सत्याशी** हो ।

671. आपने सत्य के सदैव ही वाणी से जोड के रखा है, आपके वचन सत्य ही रहते हैं, इसलिये **सत्यसन्धान** हो ।

672. आप स्वयं आपके परम शुक्ल-लेष्या युक्त विशुद्ध-आत्मा से शुद्ध मोक्ष स्वरुप ही हैं, **सत्य** ही हैं ।

673. आप सदैव सत्य और सत्य-मात्र का आधार लेने से **सत्यपरायण** भी कहे जाते हैं ।

स्थेयान् स्थवीयान्नेदीयान् दवीयान् दूरदर्शन: ।

अणोरणियान अनणु र्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥

अन्वयार्थ :

674. आप स्थिर हैं, अविचल हैं, अथवा आप उर्जा हैं; इसलिये **स्थेयान** हैं ।

675. आप स्थूल हो, भरपूर हो, या आपका प्रभाव तीनों लोक में पाया जाता है, इसलिये आप **नेदियान** हो ।

676. आप दूर हो, अर्थात सर्व प्रकार के सर्व पापों से दूर हो, इसलिये **दवियान्** हो ।

677. आप के दर्शन कहीं से भी हो जाते हैं, अर्थात जो भी आपकी प्रतिमा मन में रखते हैं, वे कहीं भी हो, आपके दर्शन पाते हैं, इसलिये **दूरदर्शन** हो ।

678. परमाणु से भी सुक्ष्म हो, अर्थात आप का यथार्थ रुप मात्र आपको ही दृगोचर हैं, आप **अणोरणीयान** (अणो: अणीयान = अणु में भी अणुरुप) हो ।

679. आप अनंतज्ञान राशी स्वरुप हो, इसलिये **अनणु** हो ।

680. गुरुओं में आद्य अथवा प्रथम अथवा ज्येष्ठ होने से **आद्यगुरु** हो ।

681. गुरुओं में गुरु हो यह श्लोक विलक्षण है, इसमे भगवान को स्थूल, सुक्ष्म, सर्वव्यापक, अनंतरुप, ज्येष्ठ, आद्य, गुरु, तथा सर्वत्रदर्शं कहा गया है ।

सदायोग: सदाभोग: सदातृप्त: सदाशिव: ।

सदागति: सदासौख्य: सदाविद्य: सदोदय: ॥१०॥

अन्वयार्थ :

682. सदैव योग-स्वरुप होने से **सदायोग** हो ।

683. अनंतवीर्य के भोक्ता होने से **सदाभोग** हो ।

684. कोई कामना ना रहने से **सदातृप्त** हो ।

685. सदा मोक्ष-स्वरुप होने से **सदाशिव** हो ।

686. शाश्वत लक्ष्य रहने से **सदागति** हो ।

687. अनंत-सुख के धारी होने से **सदासुख** हो ।

688. सदा ज्ञान-स्वरुप हैं, अर्थात केवलज्ञान रुप होने से अथवा सदैव विद्यमान रहने से **सदाविद्य** हो ।

689. सदैव उदित होनेवाले भानु-सम ज्ञान-प्रकाश से अज्ञान नष्ट करनेवाले होने से **सदोदय** भी कहलाते हैं ।

सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृतः ।

सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

अन्वयार्थ :

690. शब्द या वाणी सुंदर होने से **सुघोष** हो ।

691. सुंदर वदन के कारण **सुमुख** हो ।

692. शांत रहने से **सौम्य** हो ।

693. सुखकारक होने से **सुखद** हो ।

694. सम्यक हित का ही उपदेश देने से **सुहित** हो ।

695. आप सबके मित्र हैं, उनके कल्याणकारी हैं, उनको पार लगानेवाले हैं, **सुहृत** हैं ।

696. मिथ्यादृष्टीयों को, अभव्य जीवों को आपका स्वरुप दिखता नहीं, अथवा उनसे **सुगुप्त** रहता है ।

697. तीनों गुप्तियों का सदैव पालन करने से **गुप्तिभृत्** हो ।

698. पापों से आत्मा की अथवा समस्त जीवों के रक्षक होने से **गोप्ता** हो ।

699. तीनों लोकों को प्रत्यक्ष देखनेसे **लोकाध्यक्ष** हो ।

700. इन्द्रीय इच्छा, कामना, वासना का तप के द्वारा दमन करने से **दमीश्वर** भी कहलाते हैं ।

इति असंस्कृतादिशतम् ।

अष्ठम अध्याय

बृहन् बृहस्पती र्वाग्मी वाचस्पती रुदारधी: ।

मनीषी धिषणो धीमान् शेमुषीशो गिरांपति: ॥१॥

अन्वयार्थ :

701. देवों के गुरु बृहस्पती के भी गुरु या श्रेष्ठ होने से **बृहद बृहस्पती** हो ।

702. आपकी वाणी अतुलनीय, नय और प्रमाण से युक्त है, आप विलक्षण वक्ता अर्थात **वाग्मी** हो ।

703. आपका वाणी पर प्रभुत्व है, आपसे विवाद या तर्क में कोई जीत नहीं सकता, अथवा आपकी वाणी सदैव सत्य होती है इसलिये **वाचस्पती** हो ।

704. आपकी बुद्धी उदार है, आप समानता से उदारता से सबके लिए उपदेश देते हैं, इसलिये **उदारधी** हैं ।

705. बुद्धीमान होने से अथवा सबके हृदय में वांछित रहने से **मनीषी** हैं ।

706. केवलज्ञान धारण करनेवाली आपकी बुद्धी अपार होने से **धीषण** हैं ।

707. इसी कारण से आप **धीमान्** भी हैं ।

708. इसी कारण से आप **शेमुषीश** भी हो ।

709. सब मुख्य तथा गौण भाषाओं के स्वामी होने से **गिरांपति** के नाम से भी जाने जाते हैं ।

नैकरुपो नयोत्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।

अविज्ञेयोऽ प्रतर्क्यात्मा कृतज्ञ: कृतलक्षण: ॥२॥

अन्वयार्थ :

710. अनेकांत के व्याख्याता होने से अथवा जन्म, भाषा, पुरुषार्थ, बुद्धी, चारित्र्य, ज्ञान, गुण, सुख के परिवेक्ष में आपका हरकिसी के मन में अनेक रुप होने से **नैकरुप** हो ।

711. नयों का उत्कृष्ट स्वरुप कहकर द्रव्य को परिभाषित करने से **नयोत्तुंग** हो ।

712. आपके आत्मा में अनेक गुण है, सुख है, बल है, ज्ञान है, शांति है इसलिये **नैकात्मा** हो ।

713. पदार्थ का अनेकांत से अनेक धर्म बतानेसे **नैकधर्मकृत** हो ।

714. साधारण जनों के ज्ञान के अपार होने से **अविज्ञेय** हो ।

715. आपके स्वरुप में, वाणी में, वचन में कोई वितर्क नहीं चल सकता अर्थात आप तर्क से परे हो, इसलिये **अप्रतर्क्यात्मा** हो ।

716. आप ज्ञानकृत हो, विशाल हृदय हो, सर्वव्यापी हो, इसलिये **कृतज्ञ** हो ।

717. एक हजार आठ सुलक्षणों से युक्त होने से **कृतलक्षण** भी कहलाते हैं ।

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भ: प्रभास्वर: ।

पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भ: सुदर्शन: ॥३॥

अन्वयार्थ :

718. अंतरंग में अर्थात आत्मा में ज्ञान होने से अथवा गर्भ से ही तीन ज्ञान के धारी होने से **ज्ञानगर्भ** हो ।

719. दयालु होने से, करुणामय होने से अथवा गर्भ में आप माता को पीडा ना हो इसलिये हलन-चलन नहीं करते थे इसलिये **दयागर्भ** हो ।

720. रत्नत्रय् रुपी आत्मा होने से, आपके गर्भ में आते ही, आपके पिता के आंगन में रत्नवर्षा होने से **रत्नगर्भ** हो ।

721. आपकी वाणी प्रभावी है, कल्याणकारी है, इसलिये **प्रभास्वर** हो ।

722. गर्भ से लक्ष्मी प्राप्त होने से अथवा आपके गर्भ में आते ही, माता पिता का वैभव बढने से **पद्मगर्भ** हो ।

723. आपके ज्ञान में समस्त जगत समाहित हैं, अथवा आपने जगत् के कल्याण के लिये ही मानों जन्म लिया है, इसलिये **जगद् गर्भ** हो ।

724. हिरण्यगर्भ (जिसके कोई बाह्य लक्षण नहीं दिखते) होने से आप **हेमगर्भ** हो ।

725. आपका दर्शन सुंदर है, अथवा आपने सम्यक पथ दर्शाया है, इसलिये **सुदर्शन** भी कहे गये है ।

लक्ष्मीवान्स्त्री दशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता ।

मनोहारो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासन: ॥४॥

अन्वयार्थ :

726. समवशरणादि तथा केवलज्ञान रुप लक्ष्मी के अधिपती होने से **लक्ष्मीवान** हो ।

727. तेरह प्रकार के उत्तम चारित्र्य के धारी होने से अथवा तीनों दशाओं में (बाल-युवा-वृद्ध) एक समान दिखने से, लगने से, होने से **त्रिदशाध्यक्ष** हो ।

728. दृढ होने से **दृढीयान** हो ।

729. सबके स्वामी होने से **इन** हो ।

730. महान होने से, जेता होने से, स्वामी होने से **ईशिता** हो ।

731. भव्य जीवों के अंत:करण को हरनेवाले **मनोहर** हो ।

732. आपक समचतुरस्त्र संस्थान है, आपके अंगोपांग मनोहर हैं, आपने मन को हरनेवाले ज्ञान की, अंगो की रचना की हैं, इसलिए **मनोज्ञांग** हो ।

733. बुद्धी को प्रेरित कर भव्य जीवों को सुबुद्धी बनानेवाले होने से अथवा आपकी वाणी सम्मोहित करनेवाली होने से **धीर** हो ।

734. आपका शासन सखोल तथा सशक्त होने से **गम्भीरशासन** के नाम से भी आपको जाना जाता है ।

धर्मयुपो दयायागो धर्मनेमी र्मुनीश्वर: ।

धर्मचक्रायुधो देव: कर्महा धर्मघोषण: ॥५॥

अन्वयार्थ :

735. धर्म के आधार-स्तंभ होने से अथवा धर्म की विजय की यशोगाथा कहनेवाला कीर्ति-स्तंभ होने से **धर्मयुप** हो ।

736. जीवों पर दया करना ही आपका याग अथवा यज्ञ है, इसलिये **दयायाग** हो ।

737. धर्मरथ की धुरा अथवा परिधी होने से **धर्मनेमी** हो ।

738. मुनीयों के पूज्य ईश्वर होने से **मुनीश्वर** हो ।

739. धर्म का चक्र तथा धर्म का चलना ही आपका शस्त्र है, इसलिये **धर्मचक्रायुध** हो ।

740. परमानंद में लीन होने से अथवा आत्मा के स्वभाव में ही क्रीडा करने से **देव** हो ।

741. कर्मों के नाशक **कर्महा** हो ।

742. धर्म का उपदेश देने से अथवा धर्म के उन्नयन की घोषणा करने से **धर्मघोषण** भी कहे जाते हैं ।

अमोघवाग मोघाज्ञो निर्मलोऽ मोघशासन: ।

सुरुप: सुभगस्त्यागी समयज्ञ समाहित: ॥६॥

अन्वयार्थ :

743. यथार्थ का बोध करानेवाली वाणी होने से अथवा निर्दोष, सफल, लक्ष्य तक पहुंचानेवाली वाणी होने से **अमोघवाक** हो ।

744. कभी व्यर्थ ना होनेवाली आज्ञा होने से **अमोघाज्ञ** हो ।

745. मल-रहित होने से **निर्मल** हो ।

746. कभी व्यर्थ ना होनेवाला, अंतिम लक्ष्य **मोक्ष** तक ले जाने वाला आपका शासन होने से **अमोघशासन** हो ।

747. आप का रुप सौख्यदायी, आनंदकारी, कल्याणप्रद होने से **सुरुप** हो ।

748. शुभंकर होने से अथवा ज्ञान का अतिशय माहात्म्य होने से **सुभग** हो ।

749. आपके पादमूल में समस्त जीव प्राणों का अभय तथा ज्ञान पाते हैं, अर्थात आप अभयदान तथा ज्ञानदान करने से आप को **त्यागी** भी कहा जाता है ।

750. समय अर्थात आत्मा का और समय अर्थात काल का यथार्थ सकल् ज्ञान होने से **समयज्ञ** हो ।

751. अपने ज्ञान से समस्त जीवों के जीवन के सदैव वर्तमान रहने से अथवा सर्वसमावेशक होने से अथवा समस्त प्राणीयों का समान हित चाहने से **समाहित** भी आपको ही कहा जाता है ।

सुस्थित स्वास्थ्यभाक् स्वस्थो निरजस्को निरुद्धव: ।

अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृह: ॥७॥

अन्वयार्थ :

752. अनंत-सुख के धारी अथवा निश्चल रहने से आप सदैव **सुस्थित** हो ।

753. आप स्वयं की, आत्मा की ही निश्चलता को सेवन करते हो, आपको संसारी भोजन की आवश्यकता नहीं इसलिये **स्वास्थ्यभाक्** हो ।

754. स्व में स्थित हो इसलिये अथवा आपको कोई रोग, व्याधी नहीं होती इसलिये **स्वस्थ** हो ।

755. कर्म-रज रहित होने से अथवा घाति-कर्म को नहीं धारण करने से **निरजस्क** हो ।

756. आपने सब कर्म तथा कषायों को निरुद्ध किया, उनपर अंकुश रखा है, इसलिये अथवा आपका कोई स्वामी ना होने से **निरुद्धव** हो ।

757. आपके आत्मा पर कोई लेप नही, सब कर्म झड गये हैं, आप **अलेप** हो ।

758. आपके आत्मा पर कोई कलुष नहीं हैं, वह निर्मल शुद्ध, परम-शुक्ल है, इसलिये **निष्कलंकात्मा** हो ।

759. आप रागादि अठारह दोष-रहित हैं, इसलिये **वीतराग** हैं ।

760. आपकी सारी इच्छाए, कांक्षाए खत्म हो गयी हैं, आप इच्छा-रहित हैं इसलिये **गतस्पृह** नाम से भी पूज्य हैं ।

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा नि:सपत्नो जितेन्द्रिय: ।

प्रशान्तोऽ नन्तधामर्षि मंगलं मलहानघ: ॥८॥

अन्वयार्थ :

761. इन्द्रियों के वश करने से **वश्येन्द्रिय** हो ।

762. संसार-बन्धन से आपकी आत्मा रहित होने से **विमुक्तात्मा** हो ।

763. आपके अब कोई शत्रु नहीं है, अथवा दुष्ट भाव से रहित निष्कंटक होकर **नि:सपत्न** हो ।

764. इन्द्रियों को जीतकर **जितेन्द्रिय** हो ।

765. शान्त होने से अथवा राग-द्वेष समाप्त होने से **प्रशांत** हो ।

766. आपके ज्ञान का तेज अनन्त होने से अथवा अनंत-वीर्यधारी आप भी तेज:पुंज होने से आप **अनंतधामर्षि** हो ।

767. पाप को गलानेवाले होने से (मं+गल) तथा शुभ लाने वाले होने से **मंगल** हो ।

768. पाप मल को दूर करनेवाले होने से **मलह** हो ।

769. पाप-रहीत होने से **अनघ** भी कहलाते हो ।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैव मगोचर: ।

अमूर्तो मुर्तिमानेको नैको नानैक तत्त्वदृक् ॥९॥

अन्वयार्थ :

770. आपके समान कोई और कही नहीं दिखता इसलिये **अनिद्दक** हो ।

771. आपके लिये अब कोई और उपमा नहीं रह गयी है अथवा सबके लिये उपमा के योग्य होने से **उपमाभूत** हो ।

772. देनेवाले अथवा दातार होने से, शुभ-फल दाता होने से **दिष्टी** हो ।

773. प्रबल होने से या स्तुति के योग्य होने से या स्वयं प्रकाशित होने से **दैव** हो ।

774. इन्द्रियो से ज्ञान में ना आनेसे **अगोचर** हो ।

775. शरीर रहितता के कारण अथवा मात्र भावों का और भक्ति का विषय होने से **अमूर्त** हो ।

776. पुरुषाकार होने से अथवा निश्चल रुप होने से **मुर्तीमान** हो ।

777. अद्वितीय होने से अथवा एक आत्मस्वरुप होने से **एक** हो ।

778. अनेक रुपों से भव्य जीवों के सहायक होने से **अनेक** हो ।

779. आत्मा के अलावा किसी भी और तत्त्व पर दृष्टी ना रखने से अथवा अन्य तत्त्वों में रुची ना होने से **नानैकतत्त्वदृक** भी कहलाये जाते हैं ।

अध्यात्म गम्योऽ गम्यात्मा योगविद्योगि वन्दित: ।

सर्वत्रग: सदाभावी त्रिकाल विषयार्थदृक्॥१०॥

अन्वयार्थ :

780. आपको केवल अध्यात्म के द्वारा ही जाना जा सकता है, इसलिये **अध्यात्मगम्य** हो ।

781. संसारी जीवों को आपका यथार्थ स्वरूप समझना अशक्य है, इसलिये **अगम्यात्मा** हो ।

782. योग के सर्वोच्च ज्ञानी होने से **योगविद्** हो ।

783. योगीयों द्वारा अर्थात मोक्षमार्ग पर साधना करनेवाले गणधरादि मुनियों के वंदनीय होने से **योगीवन्दित** हो ।

784. आप केवलज्ञान द्वारा सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं - ज्ञान के द्वारा सर्वत्र पहुंच सकते हैं, इसलिये **सर्वत्रग** हो ।

785. सदैव विद्यमान रहने से अथवा सद्भाव-युक्त ही होने से अथवा किसी भी सत्ता का अभाव होने से **सदाभावी** हो ।

786. त्रिकाल संबंधी समस्त पदार्थ की समस्त पर्यायों के देखने से **त्रिकालविषयार्थदृक** कहलाते हो ।

शंकर: शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायण: ।

अधिप: परमानन्द: परात्मज्ञ: परात्पर: ॥११॥

अन्वयार्थ :

787. सबको वरदान (मोक्ष-मार्ग का) देनेवाले अथवा संसार-दाह का शमन करनेवाले होने से **शंकर** हो ।

788. यथार्थ सुख के वक्ता, व्याख्याता होने से **शंवद** हो ।

789. मन को वश करनेवाले होने से **दान्त** हो ।

790. इन्द्रियों को, कर्मों को दमन् करनेवाले **दमी** हो ।

791. क्षमा करने में तत्पर तथा क्षमा भाव ही सदैव धारण करने से **क्षान्तिपरायण** हो ।

792. जगत के अधिपति होने से अथवा जगत् पर आपका ही शासन चलने से **अधिप** हो ।

793. आत्मा में रममाण होने का आनंद सदैव ही लेने से अथवा अनंत-सुख के धारी होने से **परमानंद** हो ।

794. निज और पर के ज्ञाता होने से अथवा विशुद्ध-आत्मा के यथार्थ स्वरुप् को जानने से **परात्मज्ञ** हो ।

795. श्रेष्ठों में श्रेष्ठ होने से **परात्पर** कहा जाता है ।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्य स्त्रिजगन्मंगलोदय: ।

त्रिजगत्पतिप्पुज्याङिघ्र स्त्रिलोकाग्र शिखामणि: ॥१२॥

अन्वयार्थ :

796. तीनों-लोक में आप प्रिय हो इसलिये **त्रिजगद्वल्लभ** हो ।

797. सबके पूज्य तथा प्रथम या अग्रार्चना योग्य होने से **अभ्यर्च्य** हो ।

798. तीनो लोकों का मंगल करनेवाले **त्रिजगन्मंगलोदय** हो ।

799. आपके चरणद्वय तीनों-लोकों के इन्द्रों द्वारा पूज्य है, इसलिये **त्रिजगत्पति पूज्याङिघ्र** हो ।

800. आप तीनों-लोक के अग्र में एक् शिखामणि के समान विराजित होने से **त्रिलोकाग्रशिखामणी** भी कहलाते हैं ।

इति बृहदादिशतम् ।

नवम-अध्याय

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रत: ।

सर्वलोकातिग: पूज्य: सर्वलोकैक सारधि: ॥१॥

अन्वयार्थ :

801. भूत-भविष्य-वर्तमान को प्रत्यक्ष और एक साथ देखने से **त्रिकालदर्शी** हो ।

802. तीनों लोक के प्रभु होने से **लोकेश** हो ।

803. समस्त प्राणियों के रक्षक होने से **लोकधाता** हो ।

804. स्वीकृत चारित्र्य को निश्चल, सम्यक रखने से अथवा पंच-महाव्रतोंका दृढता से पालन करने से **दृढव्रत** भी कहा जाता है ।

805. प्राणीयों में भी आप तीनों लोकों में श्रेष्ठ होने से आप **त्रिलोकातिग** हो ।

806. पूजा के योग्य होने से **पूज्य** हो ।

807. समस्त प्राणीयों को, भव्य जनों को मुख्यत: मोक्ष-मार्ग का स्वरुप उपदेश करने से **सर्वलोकैकसारधि** भी कहे जाते हो।

पुराण: पुरुष: पुर्व: कृतपुर्वांगविस्तर: ।

आदिदेव: पुराणाद्य :पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥

अन्वयार्थ :

808. सबसे प्राचीन होकर मुक्ती-पर्यंत शरीर में विश्राम करने से **पुराण** हो ।

809. विश्वात्मक होने से या निराकार होने से अथवा सबसे बडे होने से अथवा समवशरण की लक्ष्मी ने वरण किया हो, इसलिये **पुरुष** हो ।

810. सबसे अग्रीम होने से अथवा सबसे ज्येष्ठ होने से **पुर्व** हो ।

811. ग्यारह-अंग, चौदह-पूर्व का विस्तार का उत्कृष्ट निरुपण करने से **कृतपुर्वांगविस्तर** हो ।

812. सब देवों में मुख्य, प्रथम होने से **आदिदेव** हो ।

813. सब पुराणों में प्रथम होने से **पुराणाद्य** हो ।

814. इन्द्रादि देवों से मुख्यत: आराधित होने से अथवा सबके ईश्वर होने से **पुरुदेव** हो ।

815. देवों के देव अथवा देवों के अधिष्ठाता देव होने से **अधिदेवता** इन नामों से भी आपको पुकारा जाता है ।

युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशक: ।

कल्याणवर्ण: कल्याण: कल्य: कल्याणलक्षण: ॥३॥

अन्वयार्थ :

816. इस अवसर्पिणी-काल मे मुख्य होने से अथवा इस काल के प्रथम तीर्थंकर होने से आप **युगमुख्य** हो ।

817. इस युग में सबसे बडे या प्रथम होने से **युगज्येष्ठ** हो ।

818. विदेह क्षेत्र की रचना अवधिज्ञान से जानकर इस युग के प्रारंभ में कर्मभूमि की रचना करने से अथवा उस समय की स्थिती का आंकलन सामान्य जनों को कराने से **युगादिस्थितीदेशक** हो ।

819. तप्त-सुवर्ण के समान शरीर की कांति होने से अथवा पवित्र करनेवाले होने से **कल्याणवर्ण** हो ।

820. स्वयं मंगल होने से, पवित्र होने से **कल्याण** हो ।

821. सबका कल्याण करनेवाली आपकी वाणी, आपका उपदेश, आपका शासन रहने से **कल्य** हो ।

822. मंगल-स्वरुप होकर आप कल्याण रुप लक्षण धारण करते हैं, अथवा आपके सानिध्य में अष्ट-मंगल होते है इसलिये आपको **कल्याणलक्षण** भी कहा जाता है ।

कल्याणप्रकृति र्दीप्तकल्याणात्मा विकल्मष: ।

विकलंक: कलातीत: कलिलघ्न: कलाधर: ॥४॥

अन्वयार्थ :

826. आप कल्याण करने के स्वभावी होने से अथवा केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद आपका उपयोग मात्र कल्याण के लिये ही होने से **कल्याणप्रकृति** हो ।

827. जिसमें स्वयं प्रकाश हो, जो आत्मा प्रकाश स्वरुप हो ऐसी आत्मा के धारक आप चारों-ओर कल्याणरुपी प्रकाश फैलाते हो, इसलिये आपको **दिप्तकल्याणात्मा** भी कहा जाता है ।

828. कोई पाप, दोष, कषाय ना होने से आपको **विकल्मष** हो ।

829. कलंक, कलुष रहित होने से, विशुद्धात्मा होने से **विकलंक** हो ।

830. शरीर-रहित होने से अथवा सर्व कलाओं के पार होने से **कलातीत** हो ।

831. कलील (पाप) का नाश करनेवाले **कलीलघ्न** हो ।

832. अनेक कलापों के धारी **कलाधर** भी आप जाने जाते हैं ।

देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धु र्जगद्विभुः ।

जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥

अन्वयार्थ :

830. इन्द्रादि सब चतुःनिकाय देवों के देव होने से **देवदेव** हो ।

831. जगत् के स्वामी **जगन्नाथ** हो ।

832. जगत के कल्याणकारी होने से **जगद्बंधू** हो ।

833. समस्त जगत् के प्रभु **जगद्विभू** हो ।

834. जगत हित की कामना करनेवाले होने से **जगद्हितैषी** हो ।

835. तीनों लोक को जानने से अथवा तीनों लोकों का सम्पूर्ण ज्ञान धारण करने से **लोकज्ञ** हो ।

836. केवलज्ञान द्वारा सब जगह में व्याप्त होने से **सर्वग** हो ।

837. समस्त जगत् में श्रेष्ठ होने से **जगदग्रज** ऐसे नामों से भी आपको जाना जाता है ।

चराचरगुरु र्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः ।

सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वल ज्वलनसप्रभः ॥६॥

अन्वयार्थ :

838. समस्त चराचर को ज्ञान, उपदेश देने से तथा मार्ग दिखाने से **चराचरगुरु** हो ।

839. हृदय में स्थापित कर यत्न से जतन करने योग्य होने से **गोप्य** हो ।

840. आपकी आत्मा स्वरुप गूढ हैं, अर्थात आपके अलावा कोई नहीं जानता इसलिये **गूढात्मा** हो ।

841. गूढ पदार्थ जैसे जीवादि को जाननेसे **गूढगोचर** हो ।

842. आप सदा ही नवीन जान पडते हैं, अर्थात नित्य नये गुण प्रकट होते रहने से **सद्योजात** हो ।

843. प्रकाश स्वरुप होने से अथवा समस्त जनों को आत्मा के बारे में उपदेश देनेसे अथवा कर्म झडी हुई आपकी आत्मा परम-शुक्ल प्रकाशरुप होने से **प्रकाशात्मा** हो ।

844. जलती हुइ अग्नी के समान दैदिप्यमान होने से **ज्वलज्ज्वलनसप्रभ** भी आपके ही नाम हैं ।

आदित्यवर्णो भर्माभ: सुप्रभ: कनकप्रभ: ।

सुवर्णवर्णो रुक्माभ सूर्यकोटिसमप्रभ: ॥७॥

अन्वयार्थ :

845. उदित होते हुए सूर्य के समान आभा होने से **आदित्यवर्ण** हो ।

846. सुवर्ण के समान कांति-युक्त होने से **भर्माभ** हो ।

847. आनंद-दायक सुन्दर कान्ति होने से **सुप्रभ** हो ।

848. सुवर्ण के समान कांति-युक्त होने से **कनकप्रभ** हो ।

849. इसीलिए **सुवर्णवर्ण** भी हो ।

850. और इसीलिए **रुक्माभ** भी हो ।

851. करोडो सूर्यों के समान प्रभा होने से **सूर्यकोटीसमप्रभ** यह आपके ही नाम हैं ।

तपनीयनिभ स्तुंगो बालार्काभोऽ नलप्रभ: ।

सन्ध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभ स्तप्त चामिकरच्छवि: ॥८॥

अन्वयार्थ :

852. तप्त सुवर्ण के समान वर्ण होने से **तपनियनिभ** हो ।

853. उँचे शरीर धारी **तुंग** हो ।

854. उदय होते हुए सुर्य के समान वर्ण से **बालार्काभ** हो ।

855. अग्नी के समान वर्ण होने से **अनलप्रभ** हो ।

856. संध्या के समय छाये हुए मेघ से दृगोचर सूर्य के सुवर्ण-रक्त-वर्ण के समान होने से **संध्याभ्रबभ्रु** हो ।

857. सुवर्ण-वर्ण होने से **हेमाभ** हो ।

858. तपाये हुए सुवर्ण के समान कांति होने से आप को **तप्तचामीकरप्रभ** भी कहा जाता है ।

निष्टप्त कनकच्छाय: कनत्कांचन संनिभ: ।

हिरण्यवर्ण: स्वर्णाभ: शातकुम्भ निभप्रभ: ॥९॥

अन्वयार्थ : सुवर्ण के समान उज्ज्वल और कांतियुक्त होने से -

859. आप **निष्टप्तकनकच्छाय** हो ।

860. **कनत्कांचनसंनिभ** हो ।

861. **हिरण्यवर्ण** हो ।

862. **स्वर्णाभ** हो ।

863. **शातकुम्भनिभप्रभ** इन नाम से भी जाना जाता है ।

द्युम्नाभो जातरुपाभ स्तप्तजाम्बुदद्युति: ।

सुधौतकलधौतश्री: प्रदीप्तो हाटकद्युति: ॥१०॥

अन्वयार्थ :

864. स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से **द्युम्नाभ** तथा

865. **जातरुपाभ** तथा

866. **तप्तजांबुनद्युति** कहलाते हो ।

867. तप्त सुवर्ण से मल निकल जाने के बाद निर्मल हुए स्वर्ण जैसे होने से **सुधौतकलधौतश्री** हो ।

868. दैदिप्यमान होने से **प्रदीप्त** भी आपको ही कहा जाता है ।

869. आप को **हाटकद्युती** भी कहा जाता है ।

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः ।

शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता प्रभूः ॥११॥

अन्वयार्थ :

870. शिष्ट अर्थात उत्तम पुरुषों के प्रिय अथवा इष्ट होने से आपको **शिष्टेष्ट** हो ।

871. ऐश्वर्य तथा आरोग्यदायी होने से **पुष्टीद** हो ।

872. महा-बलवान अर्थात अनंत-वीर्य होने से **पुष्ट** हो ।

873. सबको प्रकट दिखायी देने से, आप सब में विशेष होने से अनंत लोगों में भी अलग दिखायी देने से **स्पष्ट** हो ।

874. आपकी वाणी शुद्ध, स्पष्ट, आनंददायी होने से **स्पष्टाक्षर** हो ।

875. समर्थ होने से अथवा धीर होने से अथवा क्षमाशील होने से **क्षम** हो ।

876. कर्म-शत्रु के नाशक **शत्रुघ्न** हो ।

877. क्रोध-रहित क्षमावान रहने से **अप्रतिघ** हो ।

878. सफल मार्ग के दर्शक होने से **अमोघ** हो ।

879. सन्मार्ग दर्शक होने से अथवा प्रशस्त शासन का उपदेश देने से **प्रशास्ता** हो ।

880. समस्त जनों के संसार-मार्ग के रक्षक होने से **शासिता** हो ।

881. अपने आप उत्पन्न होने से, स्वयं ही स्वयं के स्वामी होने से **स्वभू** ऐसे भी आपके रुप् हैं, आपके नाम हैं ।

शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः ।

शान्तिदः शान्ति कृच्छान्तिः कान्तिमान् कामितप्रदः ॥१२॥

अन्वयार्थ :

882. शान्ति मे ही रुचि रहने से अथवा सदैव शांत ही रहने से **शांतिनिष्ठ** आप हो ।

883. मुनियों में श्रेष्ठ होने से अथवा आप ही इस काल के प्रथम मुनि होने से अथवा इस काल में मुनि-धर्म की शुरुवात करने से **मुनिज्येष्ठ** भी आप हो ।

884. सुख की परंपरा होने से अथवा आनंद का स्रोत होने से **शिवताति** हो ।

885. कल्याण के, मोक्ष के दाता होने से **शिवप्रद** हो ।

886. शांतिदायक आप **शांतिद** हो ।
887. समस्त उपद्रव शामक होने से **शांतिकृत** हो ।
888. कर्मों का शमन करके क्षय करने से **शान्ति** हो ।
889. कान्ति-युक्त होने से **कान्तिमान** हो ।
890. मनोवांछित फल देनेवाले वरद होने से **कामितप्रद** भी आपको ही पुकारा जाता है ।

श्रेयोनिधी रधिष्ठान मप्रतिष्ठः प्रतिष्ठीतः ।

सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

अन्वयार्थ :

891. आप, भगवन् , कल्याण का सागर हो, **श्रेयोनिधी** हो ।
892. धर्म का आधार अथवा धर्म का मूल कारण होने से **अधिष्ठान** हो ।
893. आपको किसी ने ईश्वर नहीं बनाया, आप स्वयं ही स्वयं के पुरुषार्थ से ईश्वर बन गये हो, इसलिये आप **अप्रतिष्ठ** हो ।
894. लेकिन ईश्वर बनने के बाद आप सर्वत्र **प्रतिष्ठित** हो गये हो ।
895. आप अतिशय स्थिर हो, अर्थात स्वयं में हो, इसलिये आप **सुस्थिर** हो ।
896. आप ईश्वर होकर विहार-रहीत हो, आप पृथ्वी पर चले बगैर ही, सर्वत्र पहुँच जाते हो, इसलिये **स्थावर** हो ।
897. निश्चल हो, स्वयं में स्थिर हो, निज में रमते हो, इसलिये **स्थाणु** हो ।
898. आप ज्ञान के द्वारा विस्तृत हो, इसलिये **प्रथीयान** हो ।
899. प्रसिद्ध हो, लोगों के चर्चा का विषय हो इसलिये **प्रथित** हो ।
900. आप बहुत बडे हो, ज्येष्ठ हो, श्रेष्ठ हो, विश्ववंद्य हो, इसलिये आपको **पृथु** भी कहा जाता है ।

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ।

दशम्-अध्याय

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः ।

निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुर मोमुहः ॥१॥

अन्वयार्थ :

901. दश दिशा ही आपके वस्त्र हैं, अर्थात आप कोई भी वस्त्र का उपयोग नहीं करते इसलिये **दिग्वासा** हो ।

902. आप कोई भी करधनी (कमरगोफ) का प्रयोग नहीं करते मानो वायु ही जो आपकी परिक्रमा करता हैं, वह आपकी करधनी है, इसलिये **वातरशन** हो ।

903. निर्ग्रंथ मुनि जो आपका ही वेष धारण करते हैं, उनमे श्रेष्ठ होने से **निर्ग्रंथेश** हो ।

904. आप कोई भी आवरण का प्रयोग ना करनेसे **निरंबर** हो ।

905. अकिंचन होने से अथवा तुषमात्र भी परिग्रह ना होने से **निष्किञ्चन** हो ।

906. इच्छा या कांक्षा ना होने से **निरांशस** हो ।

907. ज्ञान रुपी नेत्रों को धारण करने से, आपके ज्ञान में समस्त जगत की दृष्टी में जो पदार्थ हैं, वह रहने से **ज्ञानचक्षु** हो ।

908. अत्यंत निर्मोही होने से अथवा मोहांधकार का नाश करनेसे **अमोमुह** भी आपको ही कहा जाता है ।

तेजोराशी रनंतौजा ज्ञानाब्धि: शीलसागर: ।

तेजोमयोऽमितज्योति ज्योतिर्मूर्ति स्तमोपह: ॥२॥

अन्वयार्थ :

909. समवशरण में स्थित आपका तेज अनंतगुणे दृश्य होने से अथवा तेज के समूह होने से **तेजोराशी** हो ।

910. अत्यंत पराक्रमी होने से अथवा अनंत-शक्त होने से **अनंतौजा** हो ।

911. ज्ञान के सागर होने से **ज्ञानाब्धि** हो ।

912. आपके १८००० शील गुण प्रकट होने से, शील के सागर होने से, स्वभाव में विशालता होने से **शीलसागर** हो ।

913. आपका स्वंय का तेज और समवशरण में देवकृत अतिशय तथा प्रातिहार्य से आप तेज से अंकित अर्थात **तेजोमय** हो ।

914. आपके ज्ञान-ज्योती का प्रकाश अमित है अथवा कोई भी मिती आपके ज्ञान को सीमा में नहीं बांध सकती, आप ऐसे ज्ञान का उपदेश देते हैं, जो राह में प्रकाश के समान सदैव साथ दे इसलिये **अमितज्योती** हो ।

915. तेज-स्वरुप, प्रकाशरुप, ज्ञान-ज्योतीरुप होने से **ज्योतिर्मूर्ति** हो ।

916. अज्ञानांधकार अथवा मोहांधकार का नाश करनेवाले होने से **तमोपह** भी आपका ही नाम हैं ।

जगच्चूडामणि र्दीप्त: शंवान विघ्नविनायक: ।

कलिघ्न कर्मशत्रुघ्नो लोकालोक प्रकाशक: ॥३॥

अन्वयार्थ :

917. तीन लोकों में मस्तक के रत्न होने से अथवा तिन लोक के मस्तक मुकुट अर्थात सिद्धशिला पर विराजमान होनेवाले होने से **जगच्चुडामणी** हो ।

918. तेजस्वी अथवा प्रकाशमान होने से अथवा स्वयं के प्राप्त केवलज्ञान से बोधित होने से **दीप्त** हो ।

919. सदैव सुख में साता में शांत रहने से **शंवान** हो ।

920. विघ्न अर्थात अंतराय-कर्म के नाशक होने से **विघ्नविनायक** हो ।

921. दोषों को दुर करने अथवा कषायों का नाश करने से **कलिघ्न** हो ।

922. कर्म-शत्रुओं का नाश करने से **कर्मशत्रूघ्न** हो ।

923. लोक तथा अलोक को प्रकाशित करनेवाले होने से **लोकालोकप्रकाशक** नाम से भी आपको जाना जाता है ।

अनिद्रालुरतन्द्रालु-र्जागरूक: प्रभामय: ।

लक्ष्मीपति-र्जगज्ज्योति-र्धर्मराज: प्रजाहित: ॥४॥

अन्वयार्थ :

924. आपके कोई परिषह नहीं होते अर्थात निद्रा भी नहीं हैं, इसलिये आपको **अनिद्रालु** हो ।

925. निद्रा और जागरुकता के बीच मे जो तंद्रा होती है वह स्थिती भी आपकी नहीं होती, अर्थात आप सदैव जागरुक होते हैं, इसलिये **अतंद्रालु** हो ।

926. अपने स्वरुप के सिद्धीके लिये आप सदैव तत्पर रहते हैं, आप **जागरुक** हो ।

927. ज्ञान स्वरुप होने से अथवा भामंडल सहित होने से **प्रभामय** हो ।

928. मोक्ष-लक्ष्मी के अधिपती आप **लक्ष्मीपती** भी कहलाते है ।

929. जगत को प्रकाशित करनेवाला ज्ञान धारण करने से अथवा जगत में आप जैसा कोई ना ज्ञानी होने से **जगज्ज्योति** हो ।

930. धर्म के स्वामी होने से अथवा, आपने राज्य-त्याग करके धर्म को ही अपना राज्य माना हैं, इसलिये **धर्मराज** हो ।

931. प्रजा के हितैषी होने से तथा आप ही प्रजा के लिये उसका हित हो, इसलिये आपको **प्रजाहित** भी कहा हैं ।

मुमुक्षुर्बन्ध मोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथ: ।

प्रशान्तरसशैलुषो भव्यपेटकनायक: ॥५॥

अन्वयार्थ :

932. मोक्ष में ही रुचि रखने से आप **मुमुक्षु** हैं ।

933. बन्ध और मोक्ष का स्वरुप जानने से **बन्धमोक्षज्ञ** हो ।

934. इन्द्रिय-विजयी होने से अथवा इन्द्रियेच्छा ना होने से या शांत होने से **जीताक्ष** हो ।

935. काम पर विजय पाने से **जितमन्मथ** हो ।

936. गंधर्व जैसे रस पान करके मस्त होकर नृत्य करते हैं, वैसे ही आप शांतरस में ही नर्तन करने से **प्रशांतरसशैलुष** कहे जाते हैं ।

937. समस्त लोक के भव्य जीवों के नायक होने से **भव्यपेटकनायक** भी आप कहलाते हैं ।

मूलकर्ताऽखिलज्योति-र्मलघ्नो मूलकारण: ।

आप्तो वागीश्वर: श्रेयान श्रायसुक्ति-र्निरुक्तिवाक् ॥६॥

अन्वयार्थ :

938. कर्म-भुमि के कर्ता होने से अथवा धर्म के मूल होने से **मूलकर्ता** हो ।

939. अनंत-ज्ञान-ज्योति स्वरुप होने से **अखिलज्योती** हो ।

940. राग-द्वेषादि मल का नाश करने से अथवा आत्मा के ऊपर चिपके हुए कर्म-मल का नाश करने से **मलघ्न** हो ।

941. मोक्ष के मूल कारण होने से अथवा मोक्ष की इच्छा आपको देखकर उत्पन्न होने से **मूलकारण** हो ।

942. समस्त लोक में आप ही एक विश्वसनीय (मोक्षमार्ग के) होने से अथवा आपकी वाणी यथार्थ मोक्षमार्ग प्रकाशक होने से **आप्त** हो ।

943. अमोघ वाणी के वक्ता होने से **वागीश्वर** हो ।

944. कल्याण स्वरुप अथवा इष्ट रुप होने से अथवा मंगल कर्ता होने से **श्रेयान्** हो ।

945. आपकी वाणी भी कल्याणकारी होने से अथवा मंगल होने से **श्रायसुक्ति** हो ।

946. नि:संदेह वाणी होने से अथवा आजतक आपके जैसी वाणी किसी ने भी नहीं प्रकट की हुई होने से आपको **निरुक्तवाक्** इत्यादि नामों से भी जाना जाता है ।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजित् विश्वभाववित् ।

सुतनु स्तनुनिर्मुक्त: सुगतो हतदुर्नय: ॥७॥

अन्वयार्थ :

947. सबसे श्रेष्ठ वक्ता होने से **प्रवक्ता** हो ।

948. आपकी वाणी में सर्व प्रकार के वचन शामिल होने से **वचसामिश** हो ।

949. कामदेव को जीतने से अथवा मार पर विजयी होने से **मारजित्** हो ।

950. समस्त प्राणीयों के अभिप्राय जानने से अथवा विश्व व्यापक भाव धारण करने से **विश्वभाववित्** हो ।

951. आप जरा नष्ट होने से आप सुकोमल या सुंदर तनु के स्वामी हैं, इसलिये **सुतनु** हो ।

952. शरीर तो आपका नाममात्र है, अर्थात संसारी शरीर को जो व्याप रहता है, वह आपका नहीं होता इसलिये आप **तनुर्निर्मुक्त** हो ।

953. मोक्ष-गति प्राप्त करनेवाले होने से अथवा आत्मा में जाकर विश्राम करने से अथवा श्रेष्ठ ज्ञान धारी होने से **सुगत** हो ।

954. मिथ्याद्दष्टीयों के खोटे नयों का नाश करनेवाले होने से आपको **हतदुर्नय** भी कहा जाता है ।

श्रीश:श्रीश्रितपादाब्जो वीतभी रभयंकर: ।

उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सल: ॥८॥

अन्वयार्थ :

955. अंतरंग केवलज्ञान रुपी और बहिरंग समवशरण रुपी लक्ष्मी के स्वामी होने से आप को **श्रीश** हो ।

956. लक्ष्मी आप की दासी होकर आपके चरणों में रहती है अथवा आप के चरण कमल जहाँ भी पडते हैं, वहां पद्म, श्री अर्थात कमलों की रचना होने से **श्रीश्रितपादाब्ज** हो ।

957. भय को जीतने से **वीतभि** हो ।

958. स्वयं भी भयमुक्त होकर समस्त जनों को भी भय-मुक्त करने से **अभयंकर** हो ।

959. दोषों का नाश करने से **उत्सन्नदोष** हो ।

960. विघ्न-रहित होने से अथवा विघ्नों का नाश करने से अथवा उपसर्ग-मुक्त होने से **निर्विघ्न** हो ।

961. स्थिर, निर्विकार, निरामय होने से **निश्चल** हो ।

962. लोगों के प्रिय होने से अथवा आप लोगों के प्रति वात्सल्य-सहित होने से **लोकवत्सल** कहे जाते हैं ।

लोकोत्तरो लोकपति र्लोकचक्षुर पारधी: ।

धीरधी र्बुद्धसन्मार्ग शुद्ध: सुनृत-पूतवाक् ॥९॥

अन्वयार्थ :

963. समस्त लोकों मे उत्कृष्ट होने से अथवा लोक में आपसे श्रेष्ठ कोई ना होने से **लोकोत्तर** हो ।

964. तीनो लोक के नेता होने से **लोकपति** हो ।

965. जैसे आपके ज्ञान के द्वारा तीनों-लोक देखे जा सकते हैं, इसलिये **लोकचक्षु** हो ।

966. अनंत-ज्ञान के धारक होने से अथवा आपके ज्ञान का पार ना होने से **अपारधी** हो ।

967. ज्ञान सदा स्थिर रहने से, आपका ज्ञान यथार्थ होने से किसी भी काल में नहीं बदलेगा इसलिये **धीरधी** हो ।

968. सबसे अच्छे मार्ग को अर्थात मोक्ष-मार्ग को यथार्थ जानने से **बुद्धसन्मार्ग** हो ।

969. स्वरुप परम-विशुद्ध होने से **शुद्ध** हो ।

970. आपके वचन पवित्र, पतित-पावन तथा यथार्थ होने से आप **सुनृतपूतवाक्** भी कहे जात हैं ।

प्रज्ञा-पारमित: प्राज्ञो यति र्नियमितेन्द्रिय: ।

भदन्तो भद्रकृत् भद्र कल्पवृक्षो वरप्रद: ॥१०॥

अन्वयार्थ :

971. आपके प्रज्ञा का पार नहीं किसी भी मिती मे, अथवा बुद्धी के पारगामी होने से आपको **प्रज्ञापारमीत** हो ।

972. प्रज्ञा के धनी होने से **प्राज्ञा** हो ।

973. आपने मोक्ष के अलावा किसी और चीज को पाने का यत्न ना किया अथवा मन को जीतने से **यती** हो ।

974. इन्द्रीयों को आपके नियम पर चलने के लिये बाध्य करने से **नियमितेन्द्रिय** हो ।

975. पूज्य अथवा प्रबुद्ध होने से **भदन्त** हो ।

976. आपने सदैव जनों का कल्याण ही चाहा और किया हुआ होने से **भद्रकृत्** हो ।

977. मंगल, शुभ, कल्याणकारी, निष्कपट होने से **भद्र** हो ।

978. इच्छित पदार्थों के दाता होने से **कल्पवृक्ष** हो ।

979. उनकी प्राप्ति करानेवाले होने से **वरप्रद** कहलाते हैं ।

समुन्मूलीत-कर्मारि: कर्मकाष्ठाऽऽशुशुक्षणि: ।

कर्मण्य कर्मठ: प्रान्शु र्हेयादेय-विचक्षण: ॥११॥

अन्वयार्थ :

980. कर्मरुप शत्रूओं को जड से उखाड फेंकने से **समुन्मूलितकर्मारि** हो ।

981. लकडी के समान धीरे-धीरे या थोडे-थोडे जलनेवाले कर्मों को जलानेवाले अग्नी होने से **कर्मकाष्ठशुशुक्षणी** हो ।

982. चारित्र्य के नितान्त कुशल होने से **कर्मण्य** हो ।

983. आचरण-निष्ठ होने से **कर्मठ** हो ।

984. सबसे उँचे, प्रकाशमान्, उत्कृष्ट होने से **प्रांशु** हो ।

985. छोडने योग्य और ग्रहण करने योग्य पदार्थों को जानने में निष्णात होने से **हेयादेयविचक्षण** भी हैं ।

अनन्तशक्ति रच्छेद्य स्त्रिपुरारि स्त्रिलोचनः ।

त्रिनेत्र स्त्र्यम्बक स्त्र्यक्ष केवलज्ञान-वीक्षणः ॥१२॥

अन्वयार्थ :

986. अंतराय-कर्म का नाश करके आप ने अनंत-वीर्य पाया हैं, इसलिए आप **अनंतशक्ती** हो ।

987. आपका छेदन या भेदन ना कर सकने से **अच्छेद्य** हो ।

988. जन्म-जरा-मृत्यु का नाश करने से तथा स्वर्ग, मध्य-लोक, अधो-लोक में पुनः जन्म लेकर इन तीनों पुरों का स्वयं के जीव की अपेक्षा में नाश करने से **त्रिपुरारि** हो ।

989. रत्नत्रय-रुपी तीन नेत्र होने से अथवा तीनों-लोक के तीनों-काल के समस्त पदार्थों को एक साथ देखने की क्षमता होने से **त्रिलोचन** हो ।

990. जन्म से तीन-ज्ञान के धारी होने से **त्रिनेत्र** हो ।

991. **त्र्यम्बक** हो ।

992. **त्र्यक्ष** हो ।

993. केवलज्ञान ही आपके नेत्र होने से अर्थात द्रव्येंद्रिय चक्षु का उपयोग आपको केवलज्ञान के वजह से जरुरी ना होने से **केवलज्ञानवीक्षण** भी आप ही हो ।

समन्तभद्र शान्तारि र्धमाचार्यो दयानिधीः ।

सूक्ष्मदर्शी जितानंग कृपालू धर्मदेशकः ॥१३॥

अन्वयार्थ :

994. सर्व-जन के लिये सर्व-मंगल होने से **समंतभद्र** हो ।

995. कर्मशत्रुओं को शान्त कर देनें से अथवा कोई जन्मजात शत्रु भी (जैसे सांप और नेवला अथवा हरिणी और सिंह) आपके सानिध्य में वैरभाव भूलकर शांत हो जाने से **शान्तारि** हो ।

996. धर्म को सिखानेवाले होने से **धर्माचार्य** हो ।

997. दया का सागर होने से, दया का भांडार होने से **दयानिधी** हो ।

998. सूक्षात्सूक्ष्म पदार्थ देखने से (जैसे अणु) अथवा जनों को उसके बारेमें अवगत कराने से **सूक्ष्मदर्शी** हो ।

999. कामदेव पर विजय पाने से **जितानंग** हो ।

1000. दयावान होने से **कृपालु** हो ।

1001. धर्म के यथार्थ उपदेश ही देशना के रुप में देने वाले होने से **धर्मदेशक** भी आपको कहा जाता है ।

शुभंयु सुखसाद्भूत: पुण्यराशी रनामय: ।

धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायक: ॥१४॥

अन्वयार्थ :

1002. मोक्ष रुप शुभ को प्राप्त करने से **शुभंयु** हो ।

1003. अनंत-सुख को आपने आधीन करने से अथवा अद्भुत-सुख के साथ रहने से **सुखसाद्भूत** हो ।

1004. आप का नाम, गुण, स्मरण, भक्ती, अर्चना, पूजा, वंदना पुण्य-कारक होने से **पुण्यराशी** हो ।

1005. रोग-रहित होने से **अनामय** हो ।

1006. धर्म की रक्षा करने से अथवा धर्म को शुरु करने वाले तीर्थंकर होने से **धर्मपाल** हो ।

1007. जगत् को जीने का उपदेश देकर उनका पालन करने से **जगत्पाल** हो ।

1008. धर्म रुपी साम्राज्य के स्वामी, उपदेशक, अधीश्वर होने से **धर्म-साम्राज्यनायक** भी कहा जाता है ।

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ।

स्तुति

धाम्नापते तवामुनि नामान्यागम कोविदै: ।

समुच्चिता-न्यनुध्यायन् पुमान् पूतस्मृति-र्भवेत् ॥१॥

अन्वयार्थ : हे महातेजस्वी जिनेन्द्रदेव ! इन्द्र जैसे विद्वान लोगों ने आपके उपरोक्त १००८ नामों का जो आपकी स्तुत्यर्थ हैं, संचय किया हैं । जो पुरुष इन नामों का स्मरण करता है, उसकी स्मरण-शक्ती अत्यंत तीव्र हो जाती है ।

गोचरोऽपि गिरामासां त्वम वाग्गोचरो मत: ।

स्तोता तथ्याप्य संदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत् ॥२॥

अन्वयार्थ : हे प्रभो ! यह १००८ नाम आपका वर्णन तथा स्तुति हेतु कहे गये हैं, तथापि किसी में भी इतनी प्रतिभा नहीं, की आपका यथार्थ वर्णन कर सके। यद्यपि आप वाणी के अगोचर हैं, तथापि इन् नामों से आपके वर्णन की चेष्टा करनेवाला पुरुष नि:संदेह ही अपने इष्ट-फल की प्राप्ति करता है ।

त्वमतोऽसि जगद्बंधू स्त्वमतोऽसि जगद्भिषक ।

त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धित: ॥३॥

अन्वयार्थ : हे विभो ! इस संसार में आप ही सबके बंधु, वैद्य, रक्षक तथा हितैषी हैं ।

त्वमेकं जगतां ज्योति स्त्वं द्विरुपोपयोग भाक् ।

त्वं त्रिरुपैक मुक्त्यंग: स्वोत्थानन्त चतुष्टय: ॥४॥

अन्वयार्थ : केवलज्ञान रुपसे जगत प्रकाशक होने से **एक** हैं; सम्यक दर्शन तथा ज्ञान का उपयोग धारण करने से आप **दो** हैं; आप ही सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य की एकता (मोक्ष-स्वरुप) होने से आप **तीन** हैं और अनंत-चतुष्टय (अनंत-दर्शन, ज्ञान, वीर्य और सुख) धारण करने से आप **चार** हैं ।

त्वं पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याणनायक: ।

षड् भेदभाव तत्त्वज्ञ स्त्वं सप्तनयसंग्रह: ॥५॥

अन्वयार्थ : पंच-परमेष्ठी-स्वरूप अथवा पंच-कल्याणक के (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष) स्वामी होने से आप **पाँच** हैं; छह तत्त्वों का (द्रव्यों का - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) योग्य निरुपण करने से आप **छ:** रुप हैं; सात प्रकार के नय सें युक्त होने से **सप्त** रुप भी कहे जाते हैं ।

दिव्याष्ट गुण मूर्तिस्त्वं नवकेवल लब्धिक: ।

दशावतार निर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर: ॥६॥

अन्वयार्थ : अष्ट गुण धारक (अनंतचतुष्टय, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अव्याबाधत्व) होने से **अष्ट** रुप हैं; नौ केवल-लब्धियों को धारण करने से **नौ** रुप हैं, महाबलादि दश-पर्याय धारण करने से **दश** रुप हैं अत: हे परमेश्वर आप मेरी रक्षा करो ।

युष्मन्नामावली दृब्ध विलसत्स्तोत्र मालया ।

भवन्तं वरिवस्याम: प्रसीदानु गृहाण न: ॥७॥

अन्वयार्थ : हे वरद ! आपके १००८ नाम-रुप पुष्पों की स्तोत्रमाला से हम आपकी आराधना-भक्ति करते हैं; आप हम पर प्रसन्न होकर और कृपा किजिए ।

इदं स्तोत्र मनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिक: ।

य: संपाठ्य पठत्येनं स स्यात्कल्याण भाजनम् ॥८॥

अन्वयार्थ : इस स्तोत्र के स्मरण-मात्र से भक्त पवित्र हो जाते हैं, तथा जो इसका पाठ नित्य पढता है, उसे सब प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं, अर्थात परंपरा से उसे भी मोक्ष मिल जाता है ।

तत: सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधी: ।

पौरुहुतिं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुक: ॥९॥

अन्वयार्थ : इसलिये जो पुरुष पुण्य को प्राप्त करना चाहते हैं, अथवा इन्द्रादि परम-विभुति पद को प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसे बुद्धीमान पुरुषों को इस स्तोत्र का पाठ नित्य करना चाहिए ।

स्तुत्वेति मघवा देवं चराचर जगद्गुरुम् ।

ततस्तीर्थ विहारस्य व्यधात्प्रस्तावना मिमाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ : इस प्रकारसे (उपरोक्त) इन्द्र ने चराचर स्वरुप उस् जगत्गुरु देवाधिदेव जिनेंद्र भगवान की स्तुति की और फिर इन्हे उपदेश और जन-कल्याणहेतु तीर्थ विहार करने हेतु निम्न प्रार्थना की ।

स्तुति: पुण्यगुणोत्किर्ति: स्तोता भव्य प्रसन्नधी: ।

निष्ठितार्थो भवांस्तुत्य: फलं नैश्रेयसं सुखम् ॥११॥

अन्वयार्थ : प्रसन्न बुद्धीवाला जीव स्तुति करनेवाला होता है; और स्तुति का अर्थ किसी के पवित्र गुणों को प्रशंसापूर्वक कथन करना होता है । आपने समस्त पुरुषार्थ समाप्त करके मोक्षरुप लक्ष्मी को प्राप्त किया है, इसलिये आप स्तुत्य है और आपकी स्तुति का फल भी मोक्ष ही है ।

य: स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुन: स्तोता स्वयं कस्यचित् ।

ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ॥

यो नेन्तृन् नयते नमस्कृतिमलम् नन्तव्यपक्षेक्षण: ।

स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देव: पुरु पावन: ॥१२॥

अन्वयार्थ : जो स्त्युत्य हैं, स्तावक नही, जो ध्यान करने-योग्य हैं, ध्यायक नही; जो अपने अनुयायी श्रेष्ठ पुरुषों को भी नमस्कार के योग्य बनाता है; जो अंतरंग (अनंत चतुष्टय) और बहिरंग (समवशरण) लक्ष्मी से युक्त हैं, सब में श्रेष्ठ हैं, प्रधान हैं, पवित्र हैं, ऐसे देवाधिदेव भगवान अरिहंत-देव को ही तीन-लोक का गुरु समझना चाहिये ।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरं ।

प्रोत्थानन्तच्चतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जिनीनामिनम् ॥

मानस्तम्भविलोकनानत्तजगन्मान्यं त्रीलोकीपतिं ।

प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ॥१३॥

अन्वयार्थ : जिसके चरणों की पूजा इन्द्र करते हैं; जिनके घातिया-कर्म (दर्शनावरणीय, ज्ञानवरणीय, मोहनीय और अंतराय) नष्ट हो जाने के बाद अनंत-चतुष्टय (अनंत-दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य) प्रकट हुए हैं; जो भव्य-जन रुपी कमलों को प्रफुल्लित करनेवाला है; मान-स्तंभ देखने से ही नत हुए समस्त जगत् द्वारा पूज्य है; जिनको समवशरण रुपी अचिन्त्य बाह्य-लक्ष्मी भी अनायास प्राप्त हो चुकी है और जो सब प्रकार के पापों से रहित है; ऐसे तीन-लोक के अधीश्वर भगवान जिनदेव को हम भक्ति-पूर्वक नमस्कार करते हैं ।

शुभंयु सुखसाद्भूतः पुण्यराशी रनामयः ।

धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

अन्वयार्थ : इति श्रीभगवज्जिन सहस्रनाम स्तोत्रं समाप्तम् ।